त्रिपदी



त्रिपदी

आशापूर्णा देवी
(भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता)



विशाल साहित्य सदन
20-ई, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

रात काफी गहरा उठी है। सड़कों पर चलने वाले यान-वाहन विरल नहीं हुए हैं, फिर भी कम तो हो ही गए हैं। निमन्त्रितों में से अनेकों ने विदा ले ली है और बाकी भी जाने को प्रस्तुत हैं। प्रतापराय के गेट पर से एक-एक, दो-दो करके उपस्थित कारें *खिसक रही हैं, वही कारें जो अभी तक* सड़क के दोनों ओर इस छोर से उस छोर तक अपने चिकने गंभीर चेहरे लिए लम्बी लाइन लगाए हुए थीं।

प्रतापराय काफी दिन पूर्व ही दिवंगत हो चुके हैं, फिर भी इस मकान को लोग अभी 'प्रतापराय की कोठी' कहकर ही पुकारते हैं। संभवतः कोठी के वर्तमान मालिकों ने उपर्युक्त नाम को लोगों की स्मृति से पोंछ डालने का कोई प्रयास नहीं किया है, इसी कारण लोगों का पुराना अभ्यास बरकरार है।

अवश्य ही वर्तमान स्वामित्व दो व्यक्तियों में बटा हुआ है। प्रदीप-राय और उनका अविवाहित छोटा भाई संदीपराय। प्रतापराय के दो बच्चे हैं।

प्रदीपराय की उम्र चालीस पार होने को है और खोजने पर उनकी कनपटियों के एकाध वाल रुपहले भी मिल जाएंगे। सिर को गौर से देखने पर गंजेपन का आभास मिलता है, फिर भी सबल, स्वस्थ, दीर्घ देहयष्टि उन्हें राजकीय गौरव से युक्त करके उनके व्यक्तित्व को बहुतों से अधिक प्रभावशाली बना देती है। प्रदीप चेहरे-मोहरे से अपने बाप पर गए हैं। पिता प्रतापराय साठ वर्ष की अवस्था में सीधी, सतेज देह लेकर ही स्वर्ग-वासी हुए थे।

संदीप और तरह का है।

संदीप अपनी मां की तरह कोमल और ठिगने कद-काठी का है। मुख का लावण्य और ठुड्डी का सौकुमार्य भी बार-बार उसकी मां की ही याद दिलाता है। आकृति मां की तरह किंतु प्रकृति भी मां की ही तरह है क्या?

वह मां की तरह ममतामय है अथवा बाप की तरह दृढ़निश्चयी? प्रतापराय देखने में कोमल थे, किंतु उनके भीतर का आदमी इस्पात का था। संदीप क्या वैसे ही है? तुलना करके देखने का कोई रास्ता नहीं है, क्योंकि पिता प्रतापराय और माता कल्पना दोनों ही व्यक्ति इस समय चित्र बनकर दीवार पर झूल रहे हैं। चारों सन्तानों (दो लड़के और दो लड़कियों) में से सबसे छोटे संदीप के प्रकृति-निर्माण के पूर्व ही उन्हें दीवार पर चित्र बनकर झूल जाना पड़ा।

तो भी संदीप की प्रकृति का जब निर्माण हुआ तो देखा गया कि उसमें पिता-माता दोनों की प्रकृतियों का समावेश था। वही दोनों प्रकृतियां जैसे विपरीत शक्तियों के समान उसकी व्यक्ति-सत्ता पर धूप और छाया की तरह बारी-बारी से हावी होती रहती हैं। और संदीप अपनी उस सत्ता का ज्ञानोन्मेष के समय से ही बड़ी निष्ठा के साथ लालन-पालन करता आया है।

कौन जाने किस दैवी शक्ति ने बचपन से ही संदीप के माथे पर सबसे भिन्न, सबसे पृथक् होने का टीका लगा दिया था, इस कुल की परिपाटी से सर्वथा भिन्न।

किसने कहा यह नहीं मालूम पर किसी अदृश्य शक्ति का आदेश संदीप अपने बाल्यकाल से ही मानता आया है।

इसी कारण संदीप इस सुखशांतिमय राय परिवार में अशांति का स्फुलिंग और इस निरुपद्रव कोठी में नीरव उत्पात-सा है।

'प्रतापराय की कोठी' का एक अभिजातीय इतिहास रहा है। बड़े लड़के प्रदीपराय ने उसकी रक्षा बड़े यत्न और अपने स्वभाव की महत्ता से की थी। प्रदीपराय की जाति बिरादरी में इस समय नौ बरस के लड़के का यज्ञोपवीत कराते किसी को नहीं देखा जाता, कोई अपनी मर्जी के अनुसार करता है, कोई सीधे लड़के की शादी के समय एक ही नांदीपाठ में दोनों चालू कर देता है। किंतु प्रदीप ने अपने कुल की प्रथा को बचा रखा था। नौ बरस के बच्चे का यज्ञोपवीत किया था।

आज का उत्सव उसी उपलक्ष्य में था।

लड़का उज्ज्वलदीप कल 'दंडी घर' से निकला है, आज भोज है। जैसा प्रचुर आयोजन है वैसी ही मनोहारी अतिथेयता भी है। सभी आड़ में कह रहे थे—'एकदम बाप की तरह है' अथवा—'आजकल इतना कौन करता है? पैसा होने पर भी हिम्मत नहीं पड़ती। केवल धन होने से ही तो बात नहीं चलती, मन भी तो वैसा ही होना चाहिए'—इत्यादि-इत्यादि।

निश्चय ही इस प्रकार की बातें वे लोग ही कह रहे थे जो वयस्क और आत्मीय थे और जिन्होंने प्रतापराय के समय में आना-जाना और खाना-पीना किया था।

जो नये हैं अर्थात् जो प्रदीप के मित्र अथवा ऑफिस के लोग हैं, वे तो एकदम चकित हैं। तामझाम के लिए नहीं, सौजन्य के लिए। प्रदीप ने केवल आमन्त्रितों का ही आदर-सम्मान किया यह बात भी नहीं है। कोठी से निकलकर प्रत्येक गाड़ी के ड्राइवर से स्वयं जाकर पूछा है कि उनका भोजन हुआ या नहीं।

माधुरी ने कहा था—'नीचे तल्ले में मेज लगाकर उन लोगों को एक साथ बैठाकर खिला देने से भी तो बात बनी होती।' किंतु प्रदीप [illegible]

में राजी नहीं हुआ था। कहा था उसने—'यह कैसे होगा ? वे भी तो अच्छे घरों के लड़के हैं, उनका कोई आत्मसम्मान नहीं है क्या ? केवल निमंत्रण-पत्र ही तो उन्हें नहीं मिला है। खाने-पीने की चीजें किसी के घर अनायास घूमने आने पर भी खा ली जाती हैं।'

एक प्रसिद्ध मिष्ठान्नगृह से प्रदीप ने मिठाइयों का इन्तजाम किया था। चार-पांच तरह की मिठाइयां और उसके साथ घर की बनी चाय और फ्राई की हुई चीजें। प्रदीप हर आदमी के पास जा-जाकर पूछ रहा है कि उन्होंने मुंह मीठा किया या नहीं ? 'बच्चे को आशीर्वाद दीजिए' इत्यादि।

प्रतापराय के पिता प्रभासराय अपने निज के तथा आत्मीय कुटुंबी, यहां तक कि पास-पड़ोस के घरों के नौकरों को बुलाकर बड़े आदर से खिलाते और तब तक स्वयं सामने खड़े रहते जब तक कि वह आदमी ना न कर दे। वे कहते—'खाओ भैया, खाओ, अच्छी तरह पेट भर के खा लो। तुम्हीं लोगों के मुख से भगवान का भोजन होता है।' राय परिवार की यह परम्परा रही है कि धनी-गरीब सभी को बड़े यत्न से खिलाते-पिलाते किंतु इस जमाने में यह चीज दुर्लभ है, इसीलिए प्रदीप की नम्रता और सदाशयता से सभी लोग चकित हैं और उसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

किंतु इधर जितना भी पूर्ण सब काम वह कर रहा है और आनन्दित हो रहा है, उधर एक अपूर्णता भी उसके मन को सताती है। विशेषकर समारोह के अन्त के समय।

घर में इतना बड़ा एक आयोजन हो रहा है और आज सवेरे से ही संदीप का कहीं पता नहीं है। खूब सवेरे बहन और भाभी के अनुरोध पर उसने घर में बनी कुछ मिठाइयां मुंह में डाली थीं। और शायद उसी समय उसने दोपहर के अपने खाने के लिए मना कर दिया था। कहा था—'बस, अब इस वेला के लिए निश्चित। और किसी चीज की जरूरत नहीं है। अतएव श्रीमान् संदीपराय फकत आज-भर के लिए गायब हो सकते हैं।'

किंतु यह बात सच हो सकती है अथवा उस बात को मानने योग्य

चातों की श्रेणी में रखना होगा, ऐसा तो किसी ने सोचा तक नहीं था। इस परिवार का लड़का क्या इतना बेहया हो सकता है।

यह जो आयोजन हो रहा है उसके लिए तो उसने अपनी कानी उंगली तक नहीं हिलाई होगी। प्रदीप और उसके कार्यालय के कुछ साथियों ने सारा काम किया है। छोटदी ने बल्कि एक बार कहा भी—'क्यों रे तेरी आंखों का पानी क्या एकदम मर गया है? तू क्या घर का एक भी काम नहीं करेगा? बड़े भाई का हाथ बंटाने में तुझे क्या मुश्किल गुजरती है?'

संदीप ने हंसकर कहा था—'हमारे ऊपर भरोसा ही कौन करता है?'

'भरोसा? किस बात का भरोसा रखा जाए तुझ पर? तू कोई काम करता भी है? क्यों, क्यों तेरे मुंह से नहीं निकलता—भैया, बताओ, कोई काम-धाम हो तो करूं। नहीं तो···।'

'अरे रुको न छोटदी, समुद्र पर पुल बांधने के काम में मैं गिलहरी की भूमिका नहीं निभाना चाहता।'

'तो फिर वीर हनुमान की भूमिका लेने से ही तुझे किसने मना किया था? बड़ा हो गया है, भैया का दाहिना हाथ बनने लायक हो गया है।'

'गजब की बात करती हो दीदी, जिसके दोनों कंधों के नीचे दो-दो मजबूत हाथ साक्षात् झूल रहे हों उसका दाहिना हाथ! कमाल है, क्या तुम उस भले आदमी को तीन पैरों वाले बैल के सामान तमाशा बनाना चाहती हो? क्या उसके जैसा तेजस्वी व्यक्ति एक उसी तीसरे हाथ के भरोसे इतना बड़ा आयोजन कर रहा है?'

छोटदी नाराज होकर बोली—'तो क्या तू घर को अपना घर नहीं समझेगा?'

'यह लो, घर को घर नहीं समझता तो क्या मैदान समझता हूं? घर समझता हूं, इसीलिए तो जब इच्छा होती है निकल पड़ता हूं, जब इच्छा होती है लौटता हूं, और फिर हाथ के पास भोजन देखकर एकदम कुंठित नहीं होता, मजे में हाथ बढ़ाकर मुंह में रखता जाता हूं।'

'चुप ही रहना। खाने की वात मुंह पर लाना भर मत। जो खाता है वह मेरा जाना हुआ है। ससुराल में हूं तो क्या तू समझता है कुछ घर की खबर नहीं रखती हूं ? भाभी सदा दुःखी रहती हैं कि तू कोई भी चीज कभी खाता ही नहीं है। मैंने सुना है तू कहता है—अच्छा भोजन तेरे अंदर एलर्जी पैदा करता है ?'

'कोई झूठ कहता हूं ? रत्ती भर भी नहीं। सच, दीदी, तुम लोगों के उन 'सुन्दर' से विभूषित पदार्थों के प्रति मुझे एलर्जी है, शायद यही कारण है मैं तुम लोगों की आशा के अनुरूप न वन सका।'

'वह तो देख ही रही हूं। सोचा था अपनी ननद के साथ तेरे विवाह की चेष्टा करूंगी मगर···।'

'वाप रे ! जान वची। और दीदी, तुमने अपनेउस शुभ विचार को कार्यरूप में नहीं परिणत किया इसके लिए तुम्हें अशेष धन्यवाद।'

'क्यों, क्या हमारी ननद इतनी सस्ती है ?' नाराज होकर दीदी ने पूछा था—'वदसूरत है या अयोग्य है ?'

'नहीं, वात ठीक इसकी उल्टी है। मैं तो कहना चाहता था कि अच्छा हुआ उस विदुषी, सुन्दरी एव महामूल्य वाली वस्तु को लेने के लिए मुझ जैसे तीन कौड़ी के आदमी को लेकर वाजार में नहीं जा खड़ी हुई, इसलिए धन्यवाद।'

'मगर इस कारण तुझे अपने को इतना छोटा सोचने की भी जरूरत नहीं है। वावू जी की आधी जायदाद का तो तू मालिक है ही। इतनी वड़ी कोठी···।'

'देखो छोटदी, अव तुम वड़ी सीरियस हुई जा रही हो, मुझसे वर्दाश्त नहीं होगा। तुम नहीं जानतीं, मुझे सीरियस वातों के प्रति भी एलर्जी है।'

इस पर छोटदी वहुत गुस्सा होकर उसके पास से उठ गई थीं। मगर ये सव वातें तो कई दिन आगे की हैं, जव प्रणति आई थी, अपने भतीजे के जनेऊ-संस्कार के आयोजन-पूर्व की पहली मीटिंग में।

वह सव तो ठीक है।

किंतु आज के दिन सदीप का यह क्या व्यवहार है ?

जाते-जाते प्राय: सभी अभ्यागत पूछ रहे हैं—'भाई को नही देख रहे हैं ?' निकट संबंध की महिलाएं आलोचना की झोंक में पंचमुख हो रही है । कोई इस पक्ष में, कोई उस पक्ष में । जो प्रदीप के सौजन्य को चालाकी, विनय को दिखावा, आयोजन को चतुरता को आडंबर बता रहे हैं, वे कह रहे हैं—'वह तो ऐसे ही करता है, यह कहकर ही क्या निश्चिंत हुआ जा सकता है ? चिंता नही होती ? शायद बेचारे ने सारा दिन कुछ खाया ही नही । ताज्जुब है ! तिलमात्र किसी के चेहरे पर शिकन नही है । कलकत्ते में राह-घाट में कितनी भीड़ होती है । ऐक्सीडेंट भी तो हो सकता है; मा-बाप होते तो क्या इस तरह निश्चिंत रह सकते थे ?'

जरूर ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है ।

· अधिकांश लोग सदीप की ही निंदा कर रहे हैं । ऐसे लापरवाह और माया-ममता से हीन लड़के ही तो घर-घर में है, यह बात भी लोग कह रहे हैं । वे यह भी मीमासा कर रहे हैं कि ये कलयुगी लड़के क्यों अपने घर को अपना नही समझ पा रहे हैं । इन मीमांसकों में रथी भी हैं और पैदल भी, हेयान भी है और अद्धी की साड़िया भी, गोल्ड-फ्लेक भी हैं और चारमीनार भी ।

और उधर—मतलब अंदर की बात नही कर रहा हू । अंदर, अंत.-पुर आदि आज समाप्त हो गए है । सभ्रांत घरों में तो और भी नही । सवाल ही नही उठता । किन्तु शायद जातिभेद विधाता की सृष्टि है, इसी-लिए साज-सज्जा, बोलचाल में फर्क पाया जाता है ।

हां, तो उधर जहा रूखे बाल, बड़े पालिश्ड नख, रंगे होंठ थे, तो भर-हाथ चूड़ी, बीस तोले का हार, शातिपुरी साड़ी भी थी ।

सामाजिक कार्यों में समाज के सभी स्तर के लोगों में से अभ्यागतों को चुना जाता है । और ये लोग एकत्रित होकर क्या करते हैं ? वह उसको देखकर मुंह बिचकाता है, वह उसको देखकर हंसता है । फिर भी मजे की बात यह है कि दोनों पक्षो की आलोचनाओं को गौर से सुनिये तो पाइएगा उनकी विषयवस्तु प्राय: एक होती है ।

'चुप ही रहना। खाने की बात मुंह पर लाना भर मत। जो खाता है वह मेरा जाना हुआ है। ससुराल में हूं तो क्या तू समझता है कुछ घर की खबर नहीं रखती हूं ? भाभी सदा दुःखी रहती हैं कि तू कोई भी चीज कभी खाता ही नहीं है। मैंने सुना है तू कहता है—अच्छा भोजन तेरे अंदर एलर्जी पैदा करता है ?'

'कोई झूठ कहता हूं ? रत्ती भर भी नहीं। सच, दीदी, तुम लोगों के उन 'सुन्दर' से विभूषित पदार्थों के प्रति मुझे एलर्जी है, शायद यही कारण है मैं तुम लोगों की आशा के अनुरूप न बन सका।'

'वह तो देख ही रही हूं। सोचा था अपनी ननद के साथ तेरे विवाह की चेष्टा करूंगी मगर…।'

'बाप रे ! जान बची। और दीदी, तुमने अपने उस शुभ विचार को कार्यरूप में नहीं परिणत किया इसके लिए तुम्हें अशेष धन्यवाद।'

'क्यों, क्या हमारी ननद इतनी सस्ती है ?' नाराज होकर दीदी ने पूछा था—'बदसूरत है या अयोग्य है ?'

'नहीं, बात ठीक इसकी उल्टी है। मैं तो कहना चाहता था कि अच्छा हुआ उस विदुषी, सुन्दरी एव महामूल्य वाली वस्तु को लेने के लिए मुझ जैसे तीन कौड़ी के आदमी को लेकर बाजार में नहीं जा खड़ी हुई, इसलिए धन्यवाद।'

'मगर इस कारण तुझे अपने को इतना छोटा सोचने की भी जरूरत नहीं है। बाबू जी की आधी जायदाद का तो तू मालिक है ही। इतनी बड़ी कोठी…।'

'देखो छोटदी, अब तुम बड़ी सीरियस हुई जा रही हो, मुझसे बर्दाश्त नहीं होगा। तुम नहीं जानतीं, मुझे सीरियस बातों के प्रति भी एलर्जी है।'

इस पर छोटदी बहुत गुस्सा होकर उसके पास से उठ गई थीं। मगर ये सब बातें तो कई दिन आगे की हैं, जब प्रणति आई थी, अपने भतीजे के जनेऊ-संस्कार के आयोजन-पूर्व की पहली मीटिंग में।

वह सब तो ठीक है।

किंतु आज के दिन सदीप का यह क्या व्यवहार है ?

जाते-जाते प्रायः सभी अभ्यागत पूछ रहे हैं—'भाई को नहीं देख रहे है ?' निकट संबंध की महिलाएं आलोचना की झोंक में पंचमुख हो रही है। कोई इस पक्ष में, कोई उस पक्ष में। जो प्रदीप के सौजन्य को चालाकी, विनय को दिखावा, आयोजन की चतुरता को आडंबर बता रहे हैं, वे कह रहे है—'वह तो ऐसे ही करता है, यह कहकर ही क्या निश्चिंत हुआ जा सकता है ? चिंता नहीं होती ? शायद बेचारे ने सारा दिन कुछ खाया ही नहीं। ताज्जुब है ! तिलमात्र किसी के चेहरे पर शिकन नहीं है। कलकत्ते मे राह-घाट में कितनी भीड़ होती है। ऐक्सीडेंट भी तो हो सकता है; मा-बाप होते तो क्या इस तरह निश्चिंत रह सकते थे ?'

जरूर ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है।

अधिकांश लोग संदीप की ही निंदा कर रहे हैं। ऐसे लापरवाह और माया-ममता से हीन लड़के ही तो घर-घर में है, यह बात भी लोग कह रहे हैं। वे यह भी मीमांसा कर रहे हैं कि ये कलयुगी लड़के क्यों अपने घर को अपना नहीं समझ पा रहे हैं। इन मीमांसकों में रथी भी हैं और पैदल भी, हेंडलूम भी है और अद्धी की साड़िया भी, गोल्ड-फ्लेक भी हैं और चारमीनार भी।

और उधर—मतलब अंदर की बात नहीं कर रहा हूं। अंदर, अंत.-पुर आदि आज समाप्त हो गए है। सभ्रांत घरों में तो और भी नहीं। सवाल ही नहीं उठता। किन्तु शायद जातिभेद विधाता की सृष्टि है, इसी-लिए साज-सज्जा, बोलचाल में फर्क पाया जाता है।

हां, तो उधर जहां रूखे बाल, बड़े पालिश्ड नख, रंगे होंठ थे, तो भर-हाथ चूड़ी, बीस तोले का हार, शांतिपुरी साड़ी भी थी।

सामाजिक कार्यों में समाज के सभी स्तर के लोगों में से अभ्यागतों को चुना जाता है। और ये लोग एकत्रित होकर क्या करते हैं ? वह उसको देखकर मुंह बिचकाता है, वह उसको देखकर हंसता है। फिर भी मजे की बात यह है कि दोनों पक्षों की आलोचनाओं को गौर से सुनिये तो पाइएगा उनकी विषयवस्तु प्रायः एक होती है।

मनुष्य की यह प्रकृति आदिकालीन है।

वही आत्मगरिमा और परचर्चा।

जैसे मनुष्य युग-युग से प्रेम करता आया है, वैसे ही यह सब भी। मनुष्य मंगल ग्रह पर पहुंच जाए अथवा चंद्रमा पर सैर करे, यह सब चलेगा। दो आदमी जहां एकत्र हुए नहीं कि यह सब चला।

यह रहेगा।

इसलिए है।

रायकोठी में भी था। उसी की जैसे खेती हो रही थी। फिर क्रमशः हल्का हो गया और फिर रुक गया। एक-एक करके बहुत सारी गाड़ियां चली गईं और बाकी भी जा रही थीं। जो हैं अर्थात् महिलाओं के वाक्-चातुर्य की अंतिम गोष्ठी की समाप्ति की प्रतीक्षा में रुकने को बाध्य हैं, उनके चालक और स्वामिगण बार-बार कलाई उठा-उठाकर घड़ी के कांटे देख रहे हैं।

इस अंतिम किस्त के एक व्यक्ति ने दुःख प्रकट किया—'आखिर संदीप से भेंट नहीं हो सकी।'

ये प्रदीप के एक दूर के रिश्ते के साढ़ू लगते थे और इत्तफाक से एक ब्याह देने योग्य पुत्री-रत्न का पिता होने का गौरव उन्हें प्राप्त था। पत्नी और पुत्री समेत आए थे। इच्छा थी एक बार अपनी सुसज्जिता कन्या को संदीप के दृष्टिपात में रखने का अवसर प्राप्त करते। प्रत्येक कन्यागर्वित पिता की तरह उसकी भी धारणा थी कि एक बार लड़की को किसी प्रकार लड़के की नजर के सामने डालने-भर की देर है, बस।

टाल-टूलकर एक आदमी का वहां और कितनी रात तक रुकना संभव था। हार मानकर विदा हुए वे लोग। कोई भी बाहर का आदमी न रहा। हां, बहिनों को भी यदि अभ्यागतों में गिना जाए तो केवल दो परिवार अब रायकोठी में रह गए। संदीप की बड़ी बहन, बड़े दामाद और उनके कन्या-पुत्र, छोटदी और तस्य-तस्य।

प्रदीप से बहनें छोटी हैं। इसीलिए प्रदीप और संदीप की आयु में इतना अंतर है। अल्प आयु में ही मातृ-पितृहीन हुए छोटे भाई को मां-बाप

और भाई तीनों के स्नेह देने की चेष्टा की थी प्रदीप ने, किंतु सदीप के बाल्यकाल से ही प्रदीप को पता चल गया था कि उसे पकड़े रहना असमव कार्य है और स्नेह का बंधन भी उसे बांध सकने में सक्षम नहीं है।

स्नेह, प्रेम, ममता, प्रीति जैसी चीजें सदीप के लिए अत्यंत हास्यकर हो उठती हैं। इसलिए छुटपन से वह परिवार के लिए समस्या बना हुआ है। माधुरी लडकी बुरी नहीं है, किंतु यह सच है कि वह संदीप की सगी बहन नही है, दूसरे की लडकी है, सदीप की भाभी। बार-बार अस्वीकृत और प्रतिहत होकर वह कितना दफा अयाचित अभ्यर्थना करती रहेगी! संदीप से बहुत बडी भी नही है वह कि उसकी सारी बातों को बचपना कहकर उड़ा दे सकेगी। सदीप जैसे-जैसे बडा हुआ है वैसे-वैसे ही माधुरी उसके पास से हटती गई है, कठिन होती गई है।

प्रदीप के साथ भी वैसा ही हुआ है।

फिर भी फल्गु नदी के समान बालू के नीचे जो स्नेहधारा प्रवाहित हो रही है, बीच-बीच में वह आत्मप्रकाश किए बिना नही रहती है।

किंतु अब और उस स्नेहधारा का अप्रतिहत रहना सभव नहीं दीखता।

भीतर से भी जैसे वह सूखती जा रही है। यह क्या है? ऐसा क्यों हुआ? इस तरह की असभ्यता का क्या अर्थ है?

बड़े जीजा सुरजित आकर बोले—'भाई साहब, हम लोग तो और रुक नहीं पा रहे हैं, बच्चा सो गया है। और बाकी दोनों का स्कूल है।'

प्रदीप ने थके कंठ से कहा—'अच्छा भाई···।'

सुरजित जाते-जाते बोले—'समझ मे नहीं आ रहा है छोटे को क्या हुआ। घर पहुंचकर एक बार फोन करूंगा। हो सकता है सचमुच···।'

'चिंता की कोई बात नहीं है। थोड़ी देर बाद आ जायेगा।' प्रदीप ने कहा। 'भीड़ कम होने के बाद ही जैसे उसे शांति मिलेगी।'

बहुत पहले से ही उसके मुख की उज्ज्वलता का लोप हो गया है, शारीरिक क्लांति से नहीं मानसिक थकान से। पिता की बहुत-बहुत याद आ रही है। अपने जनेऊ की भी बात याद आ रही है। उस दिन भी

काफी आदमियों ने भोजन किया था। प्रदीप को ठीक याद है, सभी लोगों के भोजन कर लेने के वाद, यहां तक कि जब नौकर-चाकर भी खा-पीकर चले गये तो रात दो वजे के लगभग पिता जी ने गुहार लगाई थी—'अरे भाई कोई है, अब हमारा खाना ले आओ। हमारे लिए सब चीजें बची हैं न? भई मैं तो लिस्ट मिलाकर खाऊंगा।' इन शब्दों में आह्लाद की कैसी झंकार थी।

काकी और मौसी दौड़कर थाल में सजाकर सब सामान ले आई। पिताजी ने उस रात कितने संतोष के साथ जमकर खाया। बचपन में प्रदीप कुछ दुर्बल था, इसी कारण पिताजी उसे 'पिद्दीप मामा' कहते थे। खाने के बाद उन्होंने पूछा था—'अच्छा अब ले आओ, देखें पिद्दीप मामा की झोली में क्या-क्या पड़ा है।' इसी की प्रतीक्षा में उतनी रात तक प्रदीप जागता रहा था। पिताजी देखेंगे तो सही, उसे कितनी अच्छी-अच्छी चीजें मिली हैं।

पिताजी प्रदीप के लिए देवता के समान थे। उसी पिता को अत्यंत अल्प आयु में ही संदीप ने खो दिया था, इसी कारण प्रदीप शुरू से ही संदीप के प्रति अतिरिक्त स्नेहशील हो उठा था। प्रदीप सोचता, वह पिता की तरह बनेगा। किंतु चाहने मात्र से कोई बात होती है क्या? समय बदल गया और अब पिताजी की तरह बनना क्या संभव होगा?

खैर, तो उस दिन उसने अपनी भिक्षा की झोली पिताजी के सामने लाकर उलट दी थी। आजकल की तरह उस समय जनेऊ में उपहार देने का रिवाज इतना प्रचलित नहीं हुआ था। प्रदीप को ठीक याद है, उसने बहुत-से रुपये ही पाये थे, कोई और वस्तु अधिक नहीं थी। आजकल की तरह कागज के रुपये नहीं चांदी के थे। वे रुपये भिक्षा के चावल में मिल गये थे। मौसी जी बार-बार चावल में हाथ डालकर रुपये निकालती थीं। रुपये के अतिरिक्त उसने दो-चार ही चीजें पाई थीं। प्रदीप की मौसी ने उसे एक चटक लाल पेलिकन कमल दी थी। और दादा जी ने एक हाथ-घड़ी। नौ साल का लड़का घड़ी लेकर भला क्या करेगा, इस बात पर सभी लोग हंसे थे। किंतु यह किसी ने नहीं सोचा कि नौ बरस का लड़का

तीन-चार जोड़े सोने के बटन या एक मुट्ठी अंगूठी लेकर ही क्या करेगा, क्योंकि यह सब देने की प्रथा थी उन दिनों।

पिताजी देखकर कितने खुश हुए थे। जैसे सचमुच लड़का बहुत बड़े ऐश्वर्य का स्वामी हो गया है। फिर पिताजी ने प्रदीप के सिर पर हाथ रखकर कहा था—'प्रदीप, इतने दिन तक तुम ब्राह्मण के लड़के थे, आज से तुम स्वयं ब्राह्मण हो गए। समझे न! ब्राह्मण माने बहुत कुछ होता है। वह सब समझना होगा, सीखना होगा। मैं आशीर्वाद देता हू कि तुम वास्तविक ब्राह्मण बनो।'

पिताजी का आशीर्वाद पत्थर पर बीज रोपना था या और कुछ किंतु वह तो अपने बच्चे को ऐसा आशीर्वाद नही दे पाएगा। यदि आशीर्वाद दे भी तो कहेगा—'सुखी होओ, स्वस्थ रहो, विद्वान बनो', और क्या कहेगा वह?

जनेऊ प्रथापालन के लिए उतना नही आयोजित किया गया था जितना घर में एक विराट् आयोजन कर पाने के सुयोग के लिए। एक बड़ा काम घर में हो इसी इच्छा के वशीभूत होकर, इसी उत्साह को लेकर वह इस काम में आगे बढा था। इसके अलावा यह भी डर था कि कहीं थोड़ा और बड़ा होने पर लड़का कह दे मैं जनेऊ नही कराऊंगा। जैसे संदीप ने कह दिया था।

पिताजी की आकस्मिक मृत्यु के कारण उसका जनेऊ उपयुक्त समय से न हो सका। जब वह सोलह साल का हुआ तो जनेऊ की बात पर उसने साफ कह दिया कि वह जनेऊ नही करेगा। बहुत समझाने-बुझाने के बाद और वादा करने के बाद कि उसे दंडी घर में नहीं रहना होगा, मुडन कराने की भी कोई जरूरत नहीं है, उसे गंगाजल में डुबाकर शीघ्रता से एक यज्ञोपवीत पहना दिया गया। किंतु कुछ दिन बाद एक दिन वह सूतों का गुच्छा कमीज के साथ गले में निकलकर धोबी के यहां चला गया था, उनके यहां से लौटकर ही नहीं आया। इसी डर से उज्ज्वल की बारी आने पर समय रहते वह काम निपटा लेने की बात सोची गई, सब कुछ बड़ा सुन्दर हुआ। किंतु घर के ही एक लडके ने व्यर्थ अहंकार के [illegible]पूत होकर

एक ऐसा काम किया कि सब मिट्टी हो गया।

शाम को अभ्यागतों का स्वागत करते समय प्रदीप का मुख आनंद से उज्ज्वल हो उठा था। किंतु ज्यों-ज्यों रात होती गई उसका मुख निष्प्रभ होता गया। लोगों ने समझा थकान है।

मगर यह बात नहीं थी। प्रदीप की शारीरिक क्षमता काफी है। ऐसे सामान्य-से परिश्रम की छाया को उसके चेहरे पर खोजना व्यर्थ है। कुछ लोगों ने सोचा दुश्चिंता के मारे उसका मुख उदास हो गया है। मगर संदीप के विषय में दुश्चिंता करना उसने बहुत पहले ही छोड़ दिया है। पहली बार जब संदीप केवल बारह-तेरह साल का था एक दिन वह रात नौ बजे तक घर नहीं लौटा था, तो सचमुच उसे दुश्चिंता हुई थी। इतनी-सी देर होने से ही वह काफी घबड़ा गया था, और संभव-असंभव हर जगह उसने संदीप को खोज डाला था। घर लौटने पर जब उसने देखा था कि लड़का बड़े मजे से पैर फैलाकर खाना खा रहा है, उसके मुंह पर कोई अपराध-भावना नहीं है तो उसने जो जीवन में कभी नहीं किया था वही कर बैठा। संदीप का कान पकड़कर उसने उससे कैफियत तलब की थी। संदीप ने कोई कैफियत नहीं दी थी। चुप खड़ा रह गया था। भाभी, दोनों बहनें, यहां तक कि घर के पुराने नौकर पूछ-पूछकर हार मान गये मगर उसने कुछ भी कहने की जरूरत नहीं समझी थी। पत्थर की मूरत की तरह अचल हो गया था।

हार मानकर प्रदीप ने ही अंत में कहा था—'अच्छा, आज जो हुआ, हुआ। इतना ध्यान रहे ऐसी हरकत फिर कभी न हो।'

संदीप ने इस बात का प्रतिवाद नहीं किया था, केवल दूसरे दिन नौ के बदले साढ़े नौ पर घर लौटा था। उस समय उमर उसकी काफी कम थी, इसी कारण उस दिन भी बहुत डांट-फटकार हुई थी। निश्चय ही इतना छोटा लड़का अपने-आप इतनी बदमाशी नहीं कर सकता, इसलिए इसके पीछे कौन है—क्या है, इस बात की खोज-बीन शुरू हुई थी मगर कुछ भी पता नहीं चला था।

संदीप दूसरे दिन और भी देर से घर लौटा था। उसके बाद वाले दिन उससे भी अधिक देर से। एक बात है कि डांट-फटकार खाकर भी उसने

मुंह नही फुलाया था। वड़े आराम से खाना खाने बैठ गया था। उसके इस असहनीय दु:साहस को देखकर घरवाले पहले तो स्तब्ध रह गये थे, फिर धीरे-धीरे उन्होंने चुप लगा लिया था। इसके बाद सभी ने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया था। वह घर आ जाता है, आकर दो कौर भोजन कर लेता है, इतने से ही राय-परिवार के लोग अपने को कृतार्थ मानते है। मानो कोई सुंदर वन-पक्षी आकर मुंडेर पर बैठकर चना खा रहा हो, जरा-सा हाथ-पैर हिलाते ही उड़ जायेगा। भैया, हाथ-पैर हिलाने की कोई जरूरत नही।

किन्तु आज के दिन भी सदीप ऐसा करेगा, जरा-सी लोकलज्जा भी नही मानेगा, यह बात जैसे सबके लिए असहनीय हो उठी है। इतने सारे लोगों ने क्या सोचा होगा ! सोचा होगा, शायद सदीप इस घर में अब नही रहता। हो सकता है यह भी सोचा हो कि भाई-भौजाई का व्यवहार शायद इतना बुरा है कि···।

इसके अलावा क्या उसे आज के दिन यह याद नही रहा कि उज्ज्वल के लिए यह दिन तो बार-बार नही आयेगा ? क्या उसे एक बार उज्ज्वल को देखने की भी इच्छा नही हुई ? इस उत्सव में एक बार भाग लेने की भी उसे इच्छा नही हुई, केवल इसलिए कि वह अपने को अस्वाभाविक जताना चाहता है। शायद वह सोचता है, स्वाभाविक होना छोटे और सामान्य लोगों के लिए ही उपयुक्त है। पाच आदमी जो घर पर आ रहे है उनसे मिलने-जुलने जैसा सस्ता काम जैसे उससे नही होता। इसी कारण उसने ऐसा विचित्र रास्ता अपना लिया है। ऐसे भाई के लिए प्रदीप दुश्चिंता करने बैठेगा ऐसा मूर्ख वह नही है, किंतु वह सोच रहा है, इसका अंत क्या होगा ? क्या वह इसी प्रकार सबकी ममता छोड़ देगा और अपने लिए जो अस्वाभाविक सुख का रास्ता उसने चुन लिया है, उसका अंत क्या होगा ?

प्रदीप की बड़ी साली यही रहेंगी, इसीलिए उन्हें कोई जल्दी नही है। धीरे-धीरे पास आकर उन्होंने प्रदीप से कहा—'प्रदीप भाई, सदीप नही आया। खाने के लिए तो नही कहूंगी। न हो तब तक लड़के के साथ-

क्या पाया है, यही देखते।'

'रहने दो। बाद में देख लूंगा।'

'बाप रे ! कितना सामान पाया है उसने। शादी-ब्याह में भी लोग इतना सामान नहीं पाते। आलमारी में सजाने के पहले एक बार देख लेते···।'

'जल्दी क्या है ? आलमारी की चाबी तो फेंकी नहीं जा रही है।'

'धन्य हो तुम भी। ऐसे भाई के लिए इतना मोह ?' दु:खी होकर साली ने कहा—'खाने के लिए तो कह नहीं पाई···।'

सचमुच प्रदीप ने खाना नहीं खाया। पिताजी की तरह ऊंची आवाज में कह नहीं पाया—'अरे भाई, कोई है ? अब हमारे लिए भी खाना ले आओ। लिस्ट मिलाकर खाऊंगा।'

संदीप ने दोपहर को भी खाना नहीं खाया था, यह बात प्रदीप के कान में पड़ चुकी थी। घर में कड़ा हुकुम है कि संदीप के लिए कोई बिना खाये बैठा हुआ है यह बात उसके कान में न पड़े क्योंकि वह इस बात से दु:खी होता है। इसीलिए उसके आने पर प्रदीप भाई के साथ खाने बैठ जायेगा, यह भी संभव नहीं है। संदीप आया है, उसने खाना खा लिया है, यह बात जानकर बाद में ही वह खाने बैठ सकता है।

एक गिलास शर्बत मांगकर प्रदीप ने पिया और अपने कमरे में जा बैठा। सोचने लगा, लोग कहते हैं ब्याह कर देने से स्वभाव बदल जाता है। किंतु ब्याह वह करेगा किसका, आकाशचारी पक्षी का ? ओफ्, यदि प्रदीप अपने भाई की चिंता को 'उंह, भाड़ में जाये'—कहकर उड़ा पाता ! जैसे संदीप सामाजिक जीवन के समस्त मूल्यों को झाड़कर अलग हो गया है, जैसे स्नेह, ममता, प्रीति, व्याकुलता को उसने परे फेंक दिया है, उसी प्रकार प्रदीप भी कर सकता···।

हाथ में से घड़ी खोलकर उसने टेबल पर रख दी है। दीवाल-घड़ी के बजने की प्रतीक्षा कर रहा है। वह अब बजने लगी थी। काफी देर तक बजती रही। प्रदीप ने एक गहरी सांस फेंकी और करवट बदल ली।

2

सिनेमा का अन्तिम शो छूटा। हाल से निकलकर जलस्रोत की तरह जन-स्रोत रास्ते में बिखर गया है। जिनका हाथी दरवाजे पर खड़ा है वे तो हाल से निकलते ही हवा हो गए, किंतु जिन्हें अपने पांवों का ही भरोसा है उनके लिए दूसरा शो सिनेमा देखना अपनी दुर्गति कराना है। फिर भी देखने के पहले कौन सोचता है यह सब। उस समय तो यही सोचता है आदमी कि सिनेमा कैसे देखा जाए। अब यही लोग अनाथ की तरह रास्ते पर कसमसाकर खड़े हो गए हैं। एक छोटी-सी प्रकाश मुकुटधारिणी टैक्सी अगर बगल से गुजरती है तो बीस आदमी उस ज्योतिर्मयी से प्रणययाचना करते उसके पीछे भाग खड़े होते हैं। मगर जब 'देवी' ठीक उनकी नाक के नीचे से उनकी आकांक्षाओं पर धूल डालती, बिना रुके गुजर जाती है तो बिचारे भग्न हृदय प्रेमी रोने-रोने को हो जाते हैं।

इस भीड़ में केवल तीन आदमी ऐसे हैं जिन्हें कोई जल्दी नहीं है, ऐसा लग रहा है। संदीप, अतीश और सुरभि।

ये जाने किस बात पर हंसते हुए चल रहे हैं। लगता है, [illegible]

आधी से ऊपर गुजर चुकी है इस बात का उन्हें पता नहीं है। जैसे सारी रात उन्हें रास्ते पर काटनी है। दो पत्ते और एक कली। दो लड़के और एक लड़की।

हंसते-हंसते वे रास्ते का अतिक्रमण कर रहे हैं। पिक्चर का गुण-दोष ही उनका आलोच्य है। कहना नहीं होगा कि उन्हें उसमें कुछ भी पसंद नहीं आ रहा है। यह उनकी उम्र का ही असर है। इस उम्र के लड़के-लड़कियों का यह स्वधर्म है, खासकर लड़कियों का। घर में कोई बात पड़ने पर आंखों पर आंचल रखकर घंटों विसूरेंगी, मगर बाहर आने पर मुंह बिचकाकर कहेंगी—छिः, कितना सेंटीमेंटल है।

रात की अप्रतिहत शून्यता में वे अबाध रूप से आलोचना-प्रत्यालोचना करते जा रहे हैं। ये कैसे एकत्रित हुए यह उन्हें याद नहीं है किंतु नित्य एक निश्चित स्थान पर वे रोज मिलेंगे यह निश्चित है। बड़े घर का लड़का संदीप, सामान्य घर का लड़का अतीश और निहायत गरीब घर की लड़की सुरभि।

अभावग्रस्त पिता की चार लड़कियों में से अंतिम सुरभि छुटपन से ही कुछ न पाकर संसार के प्रति निस्पृह, ममताशून्य और दुर्विनीत हो गई है। ज्यों ही वह थोड़ी सयानी हुई बहनों का ब्याह हो गया और विवाहिता दीदियों ने भरसक अपनी लाड़ली छोटी बहन के लिए प्रसाधन के उपकरण जुटाने में कुछ भी बाकी नहीं रख छोड़ा। उनकी हैसियत ही कितनी थी? किंतु उनकी वह सामान्य हैसियत भी सुरभि को चौपट करने के लिए काफी थी। सुरभि के पास खराब आदतों की कमी न थी।

सुरभि ने अपने अतिरिक्त और किसी के बारे में सोचना नहीं सीखा। इसीलिए किसी प्रकार इंटर पास करने के बाद उसने जब लीवर ब्रदर्स में एक नौकरी का जोगाड़ किया तो पहले माह की तनख्वाह से उसने अपने लिए ढेर सारी साड़ियां, सौंदर्य प्रसाधन सामग्री और चट्टी-जूते खरीद डाले। एक पैसा भी घर लेकर नहीं गई।

उसकी हरकत देखकर मां-बाप ने सोचा था कि उससे भविष्य में वे एक भी पैसा नहीं लेंगे, मगर अभाव वाली गृहस्थी में ऐसी प्रतीज्ञा करने

का कोई मतलब नहीं होता, लज्जा से सिर नीचा करके भी लेना पड़ता है। इसीलिए उसकी मां को दूसरे ही महीने उसके सामने हाथ फैलाना पड़ा था। और उन फैले हाथों में दया करके सुरभि ने कुछ नोट पकड़ा दिए थे। सुरभि की तनख्वाह कुछ कम नहीं थी, जैसी उसकी शिक्षा थी उस हिसाब से। चेहरा-मोहरा उसका अच्छा था और उसका लाभ उसे हुआ था।

उसी सुरभि का साथ अचानक एक दिन प्राप्त हो गया संदीप और अतीश को, जाने कौन-सा महालग्न था वह। उन्होंने कनवेंसर होने के कारण सुरभि को संगिनी बनाने में कोई आनाकानी की हो, यह बात भी नहीं। इन खामखयाली युवकों में एक महानता भी थी। वे मनुष्य का मूल्य उसके पद से नहीं आंकते थे। उनके लिए उसका मनुष्य होना ही काफी था।

उनका परिचय कैसे हुआ यह बात भले ही आज उन्हें याद न रह गई हो, किंतु उसका सूत्रपात एक घटना के माध्यम से हुआ, जो इस प्रकार है—

एक दिन बस पर चढ़ जाने के बाद अतीश को पता चला कि उसका पर्स गायब है। उसने पॉकेट टटोलना आरम्भ ही किया था कि वहां खड़े बहुत-से सभ्य व्यक्तियों के चेहरे विद्रूप से विकल हो उठे। कंडक्टर ने भी हंसकर कहा था—'रहने दीजिए भाई जान, पॉकेट फाड़ने से क्या उसमें से पैसा निकलेगा, जब है ही नहीं। पॉकेट खाली है यह तो बाहर से ही देखा जा सकता है, अद्धी का कुरता तो ठाटदार उड़ा लिया है कहीं से।' अतीश लाल चेहरा करके नीचे उतरा जा रहा था कि तभी पिछली सीट से एक युवक उठा और अतीश का कुरता खींचकर उसे अपनी ओर मुखातिब करते हुए बोला—'अरे तू भी अच्छा आदमी है! पैसे नहीं हैं तो बस से ही उतरा जा रहा है। मैं पीछे बैठा हूं क्या दीखता नहीं?'

आंखों-आंखों में इशारा हुआ। संदीप ने पैसे दे दिए। सुरभि उसी बस में थी। इनकी इशारेबाजी उसने भी देखी। उसे कौतूहल हुआ। उसने दोनों को मुखातिब होते और उनकी नजरों में तैरते अपरिचय को गौर किया था। उसे वे मित्र नहीं लगे थे। सहसा दूसरे ही क्षण वह

सम्बोधन कैसा ?

दोनों युवक एक स्टापेज पर उतरे। सुरभि भी उसी स्टापेज पर उतर गई, अपने स्टापेज से एक स्टापेज पहले ही उतरकर वह उनके नजदीक हो गई। पहले वह संदीप के ही पास गई।

उसने सीधे संदीप से प्रश्न किया—'अच्छा आप दोनों आदमी क्या सचमुच परिचित हैं ?'

'आपको क्या लगता है ?' हंसकर संदीप ने उत्तर दिया था।

'मुझे तो परिचित-से नहीं लगते आप लोग।' स्पष्ट ही उसने कहा था।

'अच्छा, अपरिचित भी क्या एक-दूसरे को 'तू' कहकर पुकारते हैं ?' कहकर संदीप ने मस्ती में आकर जैसे अतीश के कंधे पर अपना एक हाथ रखते हुए उससे प्रश्न किया था—'क्यों रे तू मेरा कौन होता है ?'

'पागल ! अरे तेरे साथ तो मेरा जन्म-जन्मांतर का परिचय है।' अतीश ने हंसकर कहा था।

सुरभि भी हंसी। बोली—'समझी। लगता है, उनका पैसा लौटाने की आपकी इच्छा नहीं किन्तु मुझे भी बड़ी लालच लग रही है। अगर आप लोगों की इस जन्म-जन्मांतर की जान-पहजान में मैं भी हिस्सेदार हो पाती···!'

'उधार लेकर फिर लौटाना नहीं पड़ेगा, शायद इसलिए !' कहा अतीश ने और हंस पड़ा था।

संदीप और सुरभि भी हंसे थे।

बस इतना और ऐसा ही था उनका परिचयसूत्र।

एक अद्भुत निकटता का सृजन हो गया इन तीनों व्यक्तियों के बीच। इस—एक लड़की, दो लड़कों को—लघुत्रयी ने मन ही मन यह निश्चय कर लिया था कि वे इस मित्रता को किसी प्रकार टूटने या गर्हित होने नहीं देंगे। इन तीनों को इस मित्रता के नियमों का पालन करने की मजबूरी थी और तीन से दो होने की बात उस नियम के विरुद्ध थी।

सुरभि उन दोनों के आकर्षण का बिंदु थी। उसी को लेकर उनकी मैत्री पूर्ण होती थी। उसकी अनुपस्थिति मे दोनों विचलित हो उठते थे। सुरभि की उपस्थिति मे दोनों यह बात उससे स्वीकार करते थे। उनमें से एक कहता—'ओह, कल तुम्हारे विरह में शाम ही बेकार हो गई।' किंतु एकांत पाकर उनमे से कोई भी उससे प्रेमनिवेदन नहीं कर डालता था। और सुरभि? उसको उन दोनों के ही प्रति समान आकर्षण का अनुभव होता था। इसीलिए जब उनमें से किसी को देखती उसका मुंह उज्ज्वल हो उठता, वह बोलती—'ओफ्, इतनी देर बाद आना हो रहा है? यहां अगोरते-अगोरते…।'

इसी प्रकार उनकी दोस्ती तीन बरस पुरानी हो चली थी।

लगता था वे रात-भर ऐसे ही पैदल चलते रहेंगे, किंतु ऐसा नहीं हुआ। एक पतली-सी गली के नुक्कड़ पर सुरभि रुक गई और उसने कहा—'रहने दो इस नरक में तुम लोगों को आने की जरूरत नहीं है।' फिर थोड़ा हंसकर बोली—'तो फिर वही बात तय रही?'

उन दोनों ने भी हंसकर कहा—'हां, वही बात तय है!'

इसके बाद अतीश और संदीप में भी विच्छेद हुआ। अलग होने के पहले अतीश ने बंधु से कहा—'आज तो डांट पड़ेगी?'

'मेरे बारे में डांट-फटकार की बात नहीं उठती।'

'फिर भी आज तो स्पेशल बात थी।'

'धत्, कितनी स्पेशल बातें पार कर गया हूं। मुझे तो सोच-सोचकर आनन्द आ रहा है कि इस समय घर पर अभ्यागतों की भीड़ नहीं होगी।'

'रहने से भी क्या नुकसान है?'

'बाप रे, तू तो जानता है मुझे वह सब नीला-पीला, चकमक, झलमल, चिकन, सैटिन वगैरह देखते ही परेशानी होने लगती है। मेरा हृदय धड़कने लगता है।'

'यह तो है किंतु तेरे भैया-भाभी…।'

'तू क्या समझता है, इतने के बाद भी वे लोग मुझसे कुछ आशा किए बैठे हैं?'

'नहीं, वह बात नहीं। फिर भी···अच्छा।'

अतीश विदा हुआ। वह पास ही रहता है। पैदल ही मार देगा। संदीप बस पर सवार होगा।

कलकत्ते में अतीश के लिए चिंता करने वाला कोई नहीं। एक दूर की बहन के साथ 'पेइंग गेस्ट' होकर रह रहा है। एकदम मुक्त विहंगम है। बहन के मकान के बाहरी हिस्से में तीन हाथ चौड़ा और चारेक हाथ लंबा एक कमरा है। उसी में अतीश का वास है। वह कमरा प्रायः मकान से संपर्कच्युत है। कमरा प्रायः बंद रहता है। उसके दरवाजे पर ताला झूलता रहता है। उसकी डुप्लीकेट चाभी अतीश के पास रहती है। वह जब भी आवे उसे कमरे में स्थित मेज पर अपना खाना ढका मिलता है। अतीश खाने के बाद फिर थाली पर ढक्कन रख देता है। सवेरे महरी आकर उसकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में वह थाली उठाकर ले जाती। मेज को साफ करने की बात कभी नहीं उठती। अतीश को यह बात याद ही नहीं रहती।

गांव में उसके पिता, माता, ताऊ, चाचा सभी कोई हैं और उनके रहने की व्यवस्था भी है। अतीश कभी-कभी कुछ रुपये भेजता है। गाहे-बगाहे घर जाता भी है। ज्यादा रुपये भेजने लायक तनख्वाह नहीं पाता और बार-बार घर जाय ऐसा कोई आकर्षण भी वह अनुभव नहीं करता। अतीश के बहुत-से छोटे भाई-बहन हैं। मां के साथ तो उसकी मुलाकात ही नहीं हो पाती। पिता को वह अधिक पसंद नहीं करता। अतएव निरंकुश।

संदीप तो स्वभाव से ही निरंकुश है। अतएव उसी निरंकुशता के आधार पर उनके बीच एक योजना बन गई है।

'तो फिर वही बात रही पक्की।' यह हुआ उस योजना का शपथ। और यह शपथ वे रोज ही उच्चारण करते हैं। कौतुक के लिए बोलते-बोलते यह उनका तकियाकलाम हो गया है, विदा होते समय उनके मुंह

से यह बात निकलेगी ही। योजना यों है—

दोनों बंधुओं में से एक भी विवाह नहीं करेगा। और अगर करेंगे भी तो एक ही लड़की से अर्थात् सुरभि से। शास्त्रीय आचार अथवा लोकाचार के अनुसार वह विवाह नहीं होगा। विवाह का जो चालू अर्थ है उस अर्थ में वे विवाह नहीं करेंगे। तीनों मिलकर एक गृहस्थी बनाएंगे बस। यही पूरी बात है।

. उस गृहस्थी का रूप? वह सब भी एकदम तय कर लिया गया है। सुरभि होगी उस गृहस्थी की मालकिन और वे दोनों होंगे उसके पोष्य। दोनों कमाकर लायेंगे और सुरभि के हाथ पर धरेंगे। वह जैसा चाहेगी चलायेगी। दोनों में से किसी को कोई हिसाब नहीं देगी किसी से कोई परामर्श नहीं करेगी।

और···हां, वही एक बात करने में देरी हुई थी, उन से बेपरवाह मस्तानों को भी।

और···यदि किसी दिन प्रयोजन हुआ तो सुरभि को उनका सामयिक पत्नित्व ग्रहण करना होगा, वह आपत्ति नहीं कर पायेगी।

सुरभि ने मुस्कराकर कहा था—'और दोनों यदि एक साथ अथवा बराबर के लिए मेरी जरूरत अनुभव करें···तो?'

'तब पंचभ्राता पांडवों का स्मरण करूंगा। उनसे बल मांगूंगा। उन परलोकगत भद्र पूर्वपुरुषों का पदानुसरण करके ही हमारी समस्या का समाधान होगा।'

'लोग क्या कहेंगे!'

'लोग? अभी भी तुम लोगों की बात कर रही हो। नः, तुमको इस 'त्रिशक्ति संघ' से खारिज किया जाता है।'

'इस प्रस्ताव पर राजी होने वाली दूसरी लड़की पाओगे कहां से?'

'इस दुनिया में क्या नहीं पाया जा सकता? किसी टोटा की लड़की के शरणापन्न होंगे।'

'ओह, कितनी घृणास्पद बात है! किंतु···।'

'तू क्या समझता है, इतने के बाद भी वे लोग मुझसे कुछ आशा किए बैठे हैं?'

'नहीं, वह बात नहीं। फिर भी···अच्छा।'

अतीश विदा हुआ। वह पास ही रहता है। पैदल ही मार देगा। संदीप बस पर सवार होगा।

कलकत्ते में अतीश के लिए चिंता करने वाला कोई नहीं। एक दूर की बहन के साथ 'पेइंग गेस्ट' होकर रह रहा है। एकदम मुक्त विहंगम है। बहन के मकान के बाहरी हिस्से में तीन हाथ चौड़ा और चारेक हाथ लंबा एक कमरा है। उसी में अतीश का वास है। वह कमरा प्रायः मकान से संपर्कच्युत है। कमरा प्रायः बंद रहता है। उसके दरवाजे पर ताला झूलता रहता है। उसकी डुप्लीकेट चाभी अतीश के पास रहती है। वह जब भी आवे उसे कमरे में स्थित मेज पर अपना खाना ढका मिलता है। अतीश खाने के बाद फिर थाली पर ढक्कन रख देता है। सवेरे महरी आकर उसकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में वह थाली उठाकर ले जाती। मेज को साफ करने की बात कभी नहीं उठती। अतीश को यह बात याद ही नहीं रहती।

गांव में उसके पिता, माता, ताऊ, चाचा सभी कोई हैं और उनके रहने की व्यवस्था भी है। अतीश कभी-कभी कुछ रुपये भेजता है। गाहे-बगाहे घर जाता भी है। ज्यादा रुपये भेजने लायक तनख्वाह नहीं पाता और बार-बार घर जाय ऐसा कोई आकर्षण भी वह अनुभव नहीं करता। अतीश के बहुत-से छोटे भाई-बहन हैं। मां के साथ तो उसकी मुलाकात ही नहीं हो पाती। पिता को वह अधिक पसंद नहीं करता। अतएव निरंकुश।

संदीप तो स्वभाव से ही निरंकुश है। अतएव उसी निरंकुशता के आधार पर उनके बीच एक योजना बन गई है।

'तो फिर वही बात रही पक्की।' यह हुआ उस योजना का शपथ। और यह शपथ वे रोज ही उच्चारण करते हैं। कौतुक के लिए बोलते-बोलते यह उनका तकियाकलाम हो गया है, विदा होते समय उनके मुंह

से यह बात निकलेगी ही। योजना यों है—

दोनों बंधुओं में से एक भी विवाह नहीं करेगा। और अगर करेंगे भी तो एक ही लड़की से अर्थात् सुरभि से। शास्त्रीय आचार अथवा लोकाचार के अनुसार वह विवाह नहीं होगा। विवाह का जो चालू अर्थ है उस अर्थ में वे विवाह नहीं करेंगे। तीनों मिलकर एक गृहस्थी बनाएंगे बस। यही पूरी बात है।

उस गृहस्थी का रूप? वह सब भी एकदम तय कर लिया गया है। सुरभि होगी उस गृहस्थी की मालकिन और वे दोनों होंगे उसके पोष्य। दोनों कमाकर लायेंगे और सुरभि के हाथ पर धरेंगे। वह जैसा चाहेगी चलायेगी। दोनों में से किसी को कोई हिसाब नहीं देगी किसी से कोई परामर्श नहीं करेगी।

और…हां, वही एक बात करने में देरी हुई थी, उन से बेपरवाह मस्तानों को भी।

और…यदि किसी दिन प्रयोजन हुआ तो सुरभि को उनका सामयिक परित्याग ग्रहण करना होगा, वह आपत्ति नहीं कर पायेगी।

सुरभि ने मुस्कराकर कहा था—'और दोनों यदि एक साथ अथवा बराबर के लिए मेरी जरूरत अनुभव करें…तो?'

'तब पंचभ्राता पांडवों का स्मरण करूंगा। उनसे बल मांगूंगा। उन परलोकगत भद्र पूर्वपुरुषों का पदानुसरण करके ही हमारी समस्या का समाधान होगा।'

'लोग क्या कहेंगे!'

'लोग? अभी भी तुम लोगों की बात कर रही हो। नः, तुमको इस 'त्रिशक्ति संघ' से खारिज किया जाता है।'

'इस प्रस्ताव पर राजी होने वाली दूसरी लड़की पाओगे कहां से?'

'इस दुनिया में क्या नहीं पाया जा सकता? किसी टोडा की लड़की के शरणापन्न होंगे।'

'ओह, कितनी घृणास्पद बात है! किंतु…।'

'किंतु-परंतु वाली कोई बात हमारी नियमावली में नहीं है, यह तुम भूली जा रही हो सुरभि।'

'नहीं, यह बात नहीं। मैं सोच रही थी···।'

'जानता हूं क्या सोच रही हो। उस संबंध में तुम निश्चित रहो। इस दुनिया में अथवा उस दुनिया में—अगर वह दुनिया नाम की कोई चीज हो तो वहां भी सर्वत्र हम लोगों को अक्षय स्वर्ग मिलेगा इसमें कोई संदेह नहीं है, क्योंकि हमें नरक जैसी किसी चीज पर विश्वास ही नहीं है। उसमें उद्धार होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। निश्चित रहो, हम जो भी संपत्ति बनायेंगे वह पूरी तुम्हारी होगी। हो सकता है हमारे ही हाथों फिर मातृतन्त्र का उद्धार लिखा हो?'

लगता है इस योजना को हजम करने में सुरभि को कुछ दिक्कत हुई थी, इसीलिए जब-तब वह इस प्रकार के प्रश्न उठाती रहती थी। उसने फिर कहा था—'अच्छा ठीक, यहां तक तो समझ गई, किंतु इस योजना का उद्देश्य क्या होगा?'

'सत्यानाश, तो संदीप, अब इसे उद्देश्य बताओ। नः, औरतों को लेकर कोई बड़ा आयोजन पूरा करना एकदम असंभव है। भूल गई कि निरुद्देश्य जीवन बिताना ही हमारा उद्देश्य है। यही महान कल्पना लेकर ही तो हमारी यह योजना बनी है।'

'अच्छा, जब हम बूढ़े हो जाएंगे?'

'बूढ़ा? धत् तेरे की। बूढ़े तो हम होंगे ही नहीं। तेल समाप्त होने के पहले दीपक ही बुझा देंगे।'

दो-चार दिन यों ही गुजर गए।

'अच्छा तो यही बात तय रही फिर।' कहकर वे एक-दूसरे से विदा लेते। किंतु फिर दूसरे दिन सुरभि कोई बात उठा देती।

'हम यह जो नौकरी-चौकरी कर रहे हैं, वह भी तो एक प्रकार की पराधीनता है। जिसे दासता कहते हैं। जब यह करना ही पड़ रहा है तो···?'

'अरे, यह तो एक प्रकार का आपद्धर्म है। कुछ रुपया तो चाहिए ही

जीवन-यापन के लिए।'

'तो क्यों न हम कोई व्यवसाय ही करें?'

'उसमें तो और झमेला है। इसमें तो कुछ ही घंटों की गलामी है। उसमें जीवन-भर अपने को चाबुक मार-मारकर चलाना होगा। नौकरी ही की जाएगी। कोई वैसी बड़ी नौकरी नहीं। यही खाने-पीने-पहनने भर को जिससे आमदनी हो जाए।'

सुरभि ने कहा था—'और मकान जुटाने का काम तो सदीप के ऊपर रहेगा। इसकी इतनी बड़ी कोठी है•••।'

सदीप चौंक उठा था।

'गजब रे गजब। अभी यह भी आशा तुम लोग लगाए बैठे हो? हमारी उस पवित्र, कुलीन तथा महिमामंडित रायवाड़ी में हम जैसे निरंकुश, असभ्य एवं निरुद्देश्य लोगों को जगह मिलेगी? नैव-नैव च•••।'

'वाह, क्यों नहीं होगा? न होगा तुम अपने हिस्से में दीवार उठा लेना। और•••।'

'अरे महीयसी महिला, क्षमा, देवी, क्षमा। इस प्रसंग पर यवनिकापात करो। तीन कमरों का एक फ्लैट खोजने की जो बात हमारे बीच तय हुई थी उसी को रहने दो।' उस दिन बात यहीं अटक गई।

और एक दिन सुरभि ने सदीप से पूछा—'तो क्या तुम अपने घर-द्वार धन-संपत्ति में से कुछ भी नहीं लोगे?'

'हमारा? हमारा कहां है श्रीमती जी? हमारा भला क्या है? मैं क्या रायकोठी के प्राचीन गौरव में चार चांद लगा रहा हूं कि वहां हमारा कुछ हो गया या मैं उस पर दावा रखूंगा।'

'आहा! उत्तराधिकारी जैसी कोई चीज जैसे इस दुनिया में है ही नहीं।'

'छि-छि-छि। देवी जी, अतीश ठीक ही कहता है कि औरतों को लेकर कोई भी बड़ी चीज नहीं की जा सकती है। हम पीछे की बात की चिंता या खोज नहीं करते। हम आगे देखते हैं। अग्रगामी होने के लिए ही हमारा इस दुनिया में अवतार हुआ है। हमारी योजना तुम्हारे दिमाग में क्यों

नहीं घुस रही है, क्या बता सकती हो ?'

सुरभि लजाकर चुप रह गई थी। कुछ दिन बहुत संभलकर बोलती रही मगर कुछ दिन बाद फिर वही संदेह झलक आया उसकी बातों में।

'अच्छा, हमारी जीवन-पद्धति क्या होगी।

'ठीक वैसे ही जैसे अभी चल रही है। फर्क सिर्फ इतना होगा कि तब यह त्रिशक्ति सम्मेलन एक ही स्थान से होगा।'

'अगर मुझे घर सजाने की इच्छा करे तो ?'

'पैसे अंटें तो सजाना। हम तो कृच्छ्रसाधना के कंटीले रास्ते से आगे बढ़ेंगे। पैसे की कमी रहने पर स्वाच्छन्द्य तथा स्वेच्छाचारिता भी नहीं कर पाएंगे हम, इसीलिए थोड़े में ही संतोष की नीति हमने अपनाने की प्रतिज्ञा की है।'

'अगर मैं उतने में ही घर सजा सकूं, तो तुम लोगों को आपत्ति नहीं होगी न ?'

'एकदम नहीं। हमारी चाह होगी केवल दो वक्त भोजन और दो कपड़े।'

क्रमशः सुरभि के प्रश्न थम गए थे।

और क्रमशः वह अभ्यस्त हो गई। 'तो फिर वही बात तय रही।'

मगर वह त्रिशक्ति सम्मेलन कब कार्यान्वित होगा इस बात की मीमांसा अभी कोई नहीं कर रहा था। किसी को कोई जल्दी नहीं थी। तीनों आदमी तीन जगह रह रहे हैं और तीनों के पॉकेट अलग-अलग हैं, फिर भी उनकी जीवन-पद्धति तो पूर्व निश्चित योजना के अनुसार ही चल रही थी। जीविका-निर्वाह की साधारण-सी समस्या का समाधान हो जाए, बाकी तो आदमी को कोई परेशानी है नहीं, वह मुक्त ही है। इच्छा हुई सिनेमा गए, नहीं तो गंगा-किनारे टहल आए, न हुआ होटलबाजी ही हो गई या फिर कहीं एकांत में बैठकर घंटों गप्प हांका किए···बस, यही तो उनका काम्य जीवन था।

पहले सुरभि के मन में अवश्य ही इस प्रकार के विचारों का जन्म

नही हुआ था, किंतु अद्भुत रूप से आकर्षण और संपूर्णतया नवीन इन रंगीन विचारों ने उसे भी अदम्य आकर्षण और मोह मे बांध दिया। दो-दो पुरुषों की प्रिया होने का मादक प्रस्ताव उसे एक विचित्र एवं आनंद उन्माद से भर देता।

वाह, कितनी उच्चकोटि का उनका संसार होगा? और कितना तो प्यार और आदर उसे प्राप्त होगा। देखने मे वह अपनी दीदी लोगों मे सुन्दर जरूर है—माधवी, करवी और पूरवी से वह काफी सुन्दर है, किंतु केवल सुन्दरता के जोर पर इस दुनिया को कितना पाया जा सकता है। बहुत होता उसी सुन्दरता के बल पर उसको अपने जीजा लोगों से थोड़ा अधिक संपन्न वर प्राप्त हो जाता, किंतु उस जीवन में और उसकी दीदियों और मां के जीवन मे अन्तर ही क्या होता? यह गंगा का किनारा, ये मैदान-घाट, पथ-प्रांतर, यह स्वेच्छाचारिता और लापरवाह जीवन का स्वाद वह कहां पाती? इतनी नई जिंदगी उसे कहां मिलती?

इतना नया आलोक?

यह आलोक का नशा बड़ा खराब होता है। भगवान ने मनुष्यों को चेतावनी देने के लिए इस दुनिया मे पतिंगों को भेजा, मगर आदमी ने उससे सावधान होने के बदले उल्टे उसी की रीति-नीति का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया।

उसी आलोक के नशे में सुरभि मां-बाप का शासन अग्राह्य करती है। उनका तिरस्कार उसे स्पर्श नही करता। यही है वह नीति जिससे निशक्ति शक्तिमान है।

उधर मां-बाप के लिए वह करैत सांप हो रही थी। लड़का तो थी नही, कि घर से निकाल बाहर कर दिया जाता। वह तो उनके लिए और भी घातक हो जाएगा और उसका मतलब होगा एक प्रकार से उसे विनाश के पथ पर ढकेल देना।

धीरे-धीरे उनके लिए सब कुछ अब असह्य होता जा रहा है। दो-दो

छोकरों के साथ जब देखो तब घूमती रहती है। जो देखता है समझ जाता है कि दोनों अवारा हैं और लड़की बदमाश।

एक लड़की के साथ एक लड़का देखते-देखते तो अनेक लोगों की आंखों में घट्टा पड़ गया है। मगर उसकी तो फिर भी कुछ युक्ति है।

किंतु यह क्या ?

यह तो निःसंदेह खराब चीज है।

बहुत ही खराब।

अतएव परिचित दृष्टि में पड़ते ही सुरभि की गतिविधियों की सूचना जगमोहन और अपर्णा—उसके मां-बाप—के कानों में नियमित ही पड़ती रहती है।

और वह प्रौढ़ दंपति विवश क्रोध से दिन-रात जलते रहते थे। आज भी जल रहे हैं। रात का एक बज रहा है, फिर भी लड़की का पता नहीं। सुन्दरी, जवान लड़की है।

कुछ और रात होने पर घर वह लौटेगी। मुहल्ले-भर को जगाते हुए सांकल खड़काएगी। और पड़ोसी देखेंगे कि जगमोहन दरवाजा खोलकर अपनी उसी लड़की को घर में घुसा लेगा।

हे ईश्वर कब इस दुर्गति का अंत होगा ? कब वे एक साथ विष खा लेने का साहस एकत्रित कर पाएंगे तथा खाकर मर पाने लायक विष पा सकेंगे।

किंतु अभी तक तो ऐसा वे कर नहीं पाए थे। उस दिन भी नहीं कर पाए। शायद इसी कारण वे आधी रात को बैठकर लड़की की मृत्युकामना कर रहे हैं और परस्पर एक-दूसरे को दोषी करार दे रहे हैं।

'रुपया ! लड़की के रुपयों से गृहस्थी बनाने चली थीं, देवी जी।' जगमोहन ने क्रुद्ध गले से कहा, 'लालच उफन आई। लड़की को नौकरी से मना करते नहीं पार लगा। उसके रुपये फाड़कर फेंकते नहीं बना। अब ? केंचुआ कालनागिन हो गई। अब पछताने से क्या होगा !'

अपर्णा भी चुप नहीं रही। वैसे ही कड़े गले से बोली—'केंचुए को केंचुआ रखूं किस जोर पर। कुछ रखा था तुमने घर में ? ग्वाला को छुड़ा

ही दिया, धोबी के बदले खुद घर में कपड़े साफ करने लगी, मकान-मालिक दावा दायर करने की धमकी दे गया है। तुम तो बड़े मजे से बोल देते हो – कहां से लाऊं! क्या चोरी करूं! उमर रहते हुए ही बूढ़े बनकर बैठे हुए हो, ऊपर से बातें बना रहे हो। गृहस्थी कैसे चला रही हूं, मैं जानती हूं। अपने पेट की जाई लड़की के सामने ही तो हाथ फैला रही हूं। क्या गलती कर रही हूं? और नहीं तो भीख के अलावा कहो ठिकाना है?'

जगमोहन कड़वे स्वर में कहते—'इस पर भी तो जिंदा रहने का शौक गया नहीं।'

'मुझे नहीं, तुम्हें। रात-दिन तो कहती हूं जहर ला दो। खा लूं, छुट्टी मिले। मगर वह भी तो तुमसे नहीं होता। हुह, एक दिन बीड़ी का बंडल न मिले तो आंखों के सामने अंधेरा छा जाता है और चले हैं बड़ी-बड़ी बातें बनाने।'

इसी प्रकार ये दोनों व्यक्ति सारे जीवन की रिक्तता एक-दूसरे के ऊपर झोंककर दिल ठंडा करते रहते हैं।

आज उसे आने दो। अगर आते ही उसे घर से नहीं निकाला तुमने तो''।' जगमोहन चुप लगा गए।

तभी बाहर साकल बजी। अपर्णा उठ खड़ी हुई। जगमोहन ने चौकी के नीचे से घर बुहारने वाला झाड़ू इस प्रकार निकाला की अपर्णा उसे देख सके। आगे बढ़कर उन्होंने लड़की को निकल जाने को कहा और साथ ही जैसे इसी श्रम से उनका वात-रुग्ण शरीर चिलक उठा। कराहने का बहाना करते हुए दबे गले से लड़की से कहा—'जो करना है कल करना, इसी समय आधी रात को···।'

इसी समय अपर्णा आगे गई, किंतु उसी रुद्राणी रूप में। उस मूर्ति से सुरभि विचलित नहीं होती। उसके लिए यह कोई नई बात नहीं है। यह तो रोजमर्रा की बात है। आज की ही तरह तीखे और कड़वे गले से उसे पुकारती है—

'किस चूल्हे में गई थी!'

आज भी उसी तरह पूछा। सुरभि को गुस्सा नहीं आता। गुस्सा करना

उनकी नीति के विरुद्ध है। पहले करती थी। जब तक त्रिशक्ति सम्मेलन की नीति की वह अभ्यस्त नहीं हुई थी तब तक वह नाराज हो जाती थी और डांट-फटकार को 'अमृतं बालभाषितम्' समझकर सह नहीं पाती थी। मां को सख्त-सुस्त बक देती थी।

मगर अब वह नीति की अभ्यस्त हो चुकी है। इसलिए कुछ भी नहीं बोलती वह। वरन् हंसकर कहा—'बाप रे! कितनी भुलक्कड़ हो गई हो तुम! बताकर नहीं गई थीं कि आज सिनेमा जाऊंगी।'

'उस नालायक से पूछो, किसी भले घर की लड़की नाइट शो में अकेली सिनेमा देखने जाती हैं?' भीतर से जगमोहन गरज उठे।

अपर्णा को लगा कहीं लड़की कोई कड़ा उत्तर न दे बैठे बाप को, इसलिए बोल उठी, अब, तुमको सोते-सोते क्या हो गया, जो इस तरह गरज रहे हो? जो कहना है मैं कहूंगी उसको।'

'हां, मुझे मालूम है तुम उससे जो कहोगी...।'

बाप की बात पूरी होने के पहले ही लड़की ने परम शांत गले से कहा—'अकेली मैं कहां गई थी बाबू जी! हमारे वही दोनों दोस्त साथ में थे...मां, बड़ी भूख लगी है। एकदम खड़ी नहीं हो पा रही हूं।'

'हमें एक गिलास पानी दे जाना।' तभी चिल्लाकर जगमोहन ने कहा।

अपर्णा ने भी उसी प्रकार चढ़े गले से कहा—'देती हूं। अभी तुम्हारी इस राजकन्या का नखरा उठा लूं, तो देती हूं।'

सुरभि ने सोचा, त्रिशक्ति संघ की नीति का पालन करना कितना कठिन है? उसने सोचा, कल उन दोनों मूर्खों से कहूंगी यह बात। 'कोई जो चाहे कहे, मगर गुस्सा नहीं करना होगा, इससे कठिन साधना और क्या हो सकती है?

फिर भी उस दिन उसने उपवास नहीं किया। खुशी मन से खाना खाया। खाना खाकर जब वह सोने का उपक्रम कर रही थी, तभी एक अप्रत्याशित बात हुई। अपर्णा ने उसके पास आकर गंभीर कंठ से कहा—'कल तुम्हें हम लोगों के लिए एक चीज ले आना होगा।' सुरभि चौंक

उठी, क्योंकि अपर्णा कभी कोई चीज इस तरह नहीं मांगती है। बाप को लेकर कहती है कि अमुक चीज के अभाव में उन्हें कितना कष्ट हो रहा है? सुरभि का अवाक् होना अकारण नहीं था।

'क्या ?' उसने पूछा।

'थोड़ा-सा विष,' अपर्णा बोली, 'दो आदमियों के खाने लायक।'

सुरभि एक पल मां के मुख की ओर देखती रही फिर उसने धीरे से कहा—'अच्छा', और चुपचाप सोने चली गई।

सोने से पहले उसने प्रतिज्ञा की कि कल भेंट होते ही उन दोनों अभागों से कहेगी—'तीन दिन के भीतर अगर तीन कमरों के फ्लैट का नहीं जोगाड़ किया जा सका तो मेरे लिए थोड़े-से जहर का इंतजाम करना होगा इतना जिससे आसानी से प्राण निकल सकें।'

अगर वे कहें कि कड़ी बात का हमारे ऊपर कोई असर नहीं होगा यही हमारी नीति है, तो मैं साफ कह दूंगी कि चलकर हमारे घर पर दो दिन रहकर दिखा दो।

लड़का और लड़की क्या बराबर होते हैं? हम तीन आदमी समाज के विरुद्ध चाहे जितना विद्रोह करें, मगर क्या औरत और मर्द का अंतर मिट जाएगा?

नहीं मिटता।

किंतु औरत की अपेक्षा मर्दों का चमड़ा कहीं ज्यादा मोटा होता है और वे बिना साधना के ही डांट-फटकार नामक वस्तु को झाड़कर चल दे सकते हैं। कहीं साधना कर लें तब तो बात ही क्या है।

इसीलिए सदीप आंधी-पानी-बिजली सब झाड़कर हंसते हुए बोला—'अच्छा अब तो तुम लोग बोल चुके? अब खाने-पीने को मिलेगा या नहीं? या कि तुम्हारे माननीय अतिथिगण सब कुछ समेटकर चले गए हैं!'

हां, उस दिन आंधी-पानी-वज्रपात सभी कुछ तो हुआ था। इतनी देर उसमें प्रधान भूमिका ग्रहण की थी उसकी छोटी दीदी प्रनति ने। उन्होंने तीखे गले से कहा—'चुप रह। और बकबक करने की जरूरत नहीं है।

जैसे खाने के लिए तो तू मरा ही जा रहा है।'

'मरा नहीं जा रहा हूं तो और क्या ? पेट में एक राक्षस मुंह वाये बैठा है। सोचता हूं तुम लोगों का मेनू देख लूं। लिस्ट मिलाकर खाऊंगा हां—आ।'

कमरे में बैठा प्रदीप चौंक उठा। लगा, बाबूजी बोल उठे। उठकर बैठ गया। आंखों में आंसू आ गए। फिर सोचा, इस पर गुस्सा करके मैंने खाना नहीं खाया। छिः। आकर सहजभाव से बोला—'प्रनति, ला हमें भी थोड़ा-सा कुछ दे। सिर का दर्द अब कुछ ठीक लग रहा है' संदीप भी चौंक उठा। और जीवन में प्रथम बार शायद लज्जित होकर बोला—'अरे, अभी भाई साहब ने खाना नहीं खाया है क्या ?'

प्रनति झनझनाकर बोली—'नहीं। तुझे लाज नहीं आई पूछते ?

प्रदीप शांत हंसी हंसकर बोला—'अरे, प्रनति, तू आज उससे झगड़ा करने पर ही तुल गई है? उस समय थोड़ी थकान मालूम हो रही थी और माथे में दर्द भी था। अब ठीक हूं।'

बहुत दिनों बाद दोनों भाई एक साथ खाने बैठे। एकाएक संदीप ने सोचा उसे इतना अच्छा क्यों लग रहा है। इसमें अच्छा लगने की तो कोई बात नहीं है। पारिवारिक सुख का अच्छा लगना ही तो पकड़ा जाना है, बंदी हो जाना है।

तब भी भाई के साथ खाना उसे अच्छा लग रहा है। बड़े उत्साह से खाने की तारीफ की। चाप वगैरह कुछ बचा है कि नहीं इस बात का भी उसने पता लगा लिया, बोला, 'अच्छा है, कल चाय के साथ खाया जाएगा।'

कमरे में बैठी माधुरी सोच रही थी—नाटकी कहीं का।

प्रदीप को लगा आज का आयोजन सफल हो गया।

प्रनति ने सोचा, बड़े भाग्य से मैं आज रुक गई। बेचारी बड़ी दीदी की कितनी इच्छा थी केवल बड़े जीजा के मारे—बाबा बुढ़ापे में भी इतना···। एक दिन छोड़कर नहीं रह सकते।

चलो प्रनति रुक गई है। कम से कम बातचीत का तो आनंद ले लें।

इसलिए फिर संदीप को छेड़ने की गरज से बोली—'सच संदीप, आज तुमने जो किया…।'

'तुम लोगों ने भी कुछ कम नहीं किया।'

'माने ?'

'ओह ? बेचारे उज्ज्वल पर कितना अत्याचार तुम लोगों ने किया। जब से देखा बेचारा मजबूर होकर अपने रेशमी बालों को मुड़ाने के लिए नाई के सामने बैठा है। मैंने प्रतिज्ञा की—जब तक उसके सिर पर फिर से बाल नहीं उग आएंगे, मैं उससे आंखें मूंदकर बातें करूंगा।'

'अब सुनिए। आदमी के ऊपर तो तिल-भर माया नहीं है जनाब को और बाल-दो-बाल पर इतनी ममता।'

'माया चीज ही मायामय है।'

उधर प्रदीप खाते-खाते सोच रहा था। तेज धार वाली नदी का बहाव मुड़ जाता है, मगर आदमी का मन क्या नहीं घूम सकता ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता—संदीप आज से बदल गया, स्वाभाविक हो गया।

संदीप सोने आया। छोटदी भी आकर उसके पास बैठ गई। बोली—'जानता है आज तेरी क्या-क्या निंदा हुई ?'

'जानता हूं।'

'कैसे जाना ?'

'अनुमान से।'

'कितना खराब लगता है बोल तो ?'

'मुझे तो बड़ा मजा आता है, लोग निंदा कर रहे होंगे, यह सोचकर ही मन गद्‌गद् हो उठता है।'

'ताज्जुब है। तेरे लिए एक विवाह प्रस्ताव आया था।'

'अच्छा ?' उछल पड़ा संदीप, 'अरे पहले क्यों नहीं बताया ? तो फिर खिसकूं यहां से। अरे बाप रे।'

'अरे क्यों बेकार उछलकूद मचाता है ? भाई साहब ने सब ठीक कर दिया है। इस बार तुझे मुक्ति मिलने से रही।'

'फिर क्या है। नायलोन की साड़ी का आर्डर दे डाल न। साड़ी

गाठड़, तोरन, साज-शहनाई वाले को आर्डर दे, झाड़-फानूस, बिजली वगैरह का इंतजाम कर और जितने तेलचट् खोपड़ी वाले हों उनके सिरों पर तेल डाल। एक गरीब गृहस्थ के दस-वीस वर्ष घर चलाने-भर को रुपया रात-भर में फूंक न डाला तो वात ही क्या वनी।'

'ये सब तो पुरानी बातें हैं। अब ये सब बातें कोई नहीं मानता है। देश के लोग खाने को नहीं पा रहे हैं। इसीलिए हम लोग अपनी हैसियत के मुताबिक खर्च नहीं करेंगे ये सब सड़ी हुई सेंटिमेंटल वातें इस समय कोई नहीं मानता है। जिसकी जैसी हैसियत होगी उसी के अनुसार काम करेगा ही।'

'वह तो है। हैसियत दिखाएगा नहीं तो कोई मानेगा कैसे? जिसके पास उड़ाने-पड़ाने और फूंकने के लिए पैसा है, वह उड़ाये और फूंके बिना मानेगा? जरूर करेगा। उसके अलावा अगर पत्तल में छुपे अन्न से तुम लोगों ने डस्टबिन न भर दिया तो भिखमंगों को अच्छी-बुरी चीजों का स्वाद कहां से मिलेगा?'

'तुम्हें तो हमेशा का यही रोना रहता है। मैं तो सौ बात की एक बात जानती हूं, जिसके भाग्य में जो लिखा है उसे वही मिलेगा। हम लोग अगर कुछ न भी करें तो क्या गरीबों का दुःख मिट जाएगा?'

'वाह! तर्क तो एकदम अकाट्य है। अच्छा, रात के दो वज रहे हैं। अब जल्दी से अपनी असली बात कह डालो।'

'बताती हूं। देख, भाई साहब तुझसे ब्याह की बात करेंगे। कोई उल्टा-सीधा उत्तर मत दे बैठना।'

'अच्छी बात है, नहीं दूंगा।'

'भाई साहब जहां लड़की देखने जाने को कहेंगे, जाएगा न?'

'जाऊंगा।'

'भाई साहब अच्छी ही लड़की दिखायेंगे तुझे।'

'ऐसा ही लगता है।'

प्रनति को अब कुछ संदेह होने लगा—'हर बात पर हूं-हूं तो कर रहा है। शादी की बात पर भी हां करेगा या नहीं? या उस समय कह देगा—

हमसे नहीं होगा !'

'ठीक उन्हीं शब्दों का व्यवहार करूंगा, ऐसा तो मैंने नहीं कहा।'

'मगर शादी ?'

'बस उसी एक बात पर हां मत करवा। देख तेरी हर बात में मैंने बिना न-नुकर किये सही कर दी है।'

'सदीप, तेरा क्या होगा रे ?'

'देख छोटदी, और सब तो ठीक है, जरा मेरे बारे में कम सोचो तो बड़ी मेहरबानी होगी।'

'अच्छा अब भाग। लड़की देखने अभी तो जाना नहीं है। आखें बंद हुई जा रही है।' आखें नींद से बंद हुई जा रही थीं, फिर भी सदीप तुरन्त सो न सका। सोचकर देखा अब और देर करना ठीक नहीं होगा, अब यह बंधन तोड़ने का समय आ गया है। इन लोगों ने षड्यन्त्र शुरू कर दिया है। आज भाई साहब के साथ खाना मुझे भी बहुत अच्छा लगा था, इस दुर्बलता को और प्रश्रय देना अच्छा नहीं होगा। यह विपत्ति का संकेत है, थोड़ी-सी भी ढिलवाही करने पर यह कीचड़ उसे ले डूबेगी।

अतएव इस दुर्बलता को कोई प्रश्रय नहीं देगा वह।

आज अतीश को भी नींद नहीं आ रही है। खाली पेट सोने की मंत्रणा ने नींद को कोसों दूर भगा दिया। सिनेमा से लौटकर ज्यों ही उसने कमरा खोला, एक बिल्ली घर में से निकलकर भागी। कमरे में घुसकर उसने देखा, उसका खाना जमीन पर गिरा पड़ा है। देखते ही समझ गया कि शायद बंद करते समय बिल्ली चौकी के नीचे छुपी हुई थी।

एक गिलास पानी गट्-गट् करके पी गया। बिस्तर पर आ बैठा तो उसे सबसे पहले सदीप की याद आई। सोचा—पट्ठा मजे में भोज के पक-वान उड़ा रहा होगा। वह यदि स्वाभाविक होता तो भतीजे के जनेऊ में मित्रों को तो जरूर आमन्त्रित करता। नींद न आने से चिढ़े हुए मन से उसने सोचा—थोड़ा स्वाभाविक होने में ही क्या दोष है !

सोने से पहले उसने सोचा—यह फ्लैट खोजना बहुत आवश्यक हो

उठा है। कल मिलते ही यही बात उठाऊंगा।

किंतु त्रिशक्ति संघ की अगली मीटिंग में सुरभि ने ही आगे वह बात उठाई। बोली—'तुम लोगों का वह फ्लैट क्या मंगल ग्रह पर तैयार हो रहा है?'

'हुआ क्या? अचानक यह रुद्र-मूर्ति क्यों?'

'हमारी मां की मूर्ति देखते तो ऐसी बात नहीं करते।'

'फिर वही पुरानी बात। वही सहन न होने वाली बात।'

'हां, तुम्हें क्या? बड़े आदमी के लाड़ले भाई हो, तुम्हें दूसरे का कष्ट कैसे मालूम होगा? अच्छा, मान लो घर पहुंचने पर तुम्हारी भाभी एक थाल ठंडा, ऐंठा चावल तुम्हें खाने को दे दें और तुम्हारे भाई साहब तुमसे खाने के लिए विष मांगें तो तुम क्या करोगे?'

'विष?'

'हां, अभागी बदमाश लड़कियों से पीछा छुड़ाने का रास्ता गार्जियन के पास और क्या है?' संदीप थोड़ी देर तक चुप रहा। फिर बोला—'एक तीन कमरों का किराये का मकान खोज निकालना इतना कठिन काम नहीं है। फिर भी तुम्हारी जो हालत सुन रहा हूं, तुम आओगी? कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे मां-बाप अंत में विरोध करके कोई खासा झमेला खड़ा कर दें?'

'आपत्ति तो करेंगे ही। झमेला नहीं कर सकते। मैंने तय कर लिया है। कोई नाबालिग नहीं हूं कि पुलिस बुलाकर कुछ कर पाएंगे। जो नहीं रहना चाहे उसे वे लोग कब तक अटका रखेंगे? कह दूंगी—विष मांगा था न। तो, यही है वह विष।'

अतीश अभी नहीं आया था। संदीप ने नहीं-नहीं करके भी पॉकेट में रखा सारा भुना चना खा डाला। अंतिम चने से उसने घास पर चलते एक कीड़े को निशाना बनाया और धीरे से कहा—'शायद उनके दिल को बहुत चोट पहुंचेगी?'

'आहा हा! भूत के मुंह में रामनाम! गार्जियन के आहत होने की बात सोच रहे हो तुम? तुम चले आओगे तो क्या तुम्हारे भैया को दुःख

न 'होगा ?'

पल-भर सदीप ने अपने को बड़ा असहाय अनुभव किया। फिर सहसा उसने जोर से हंसकर कहा—'यह बात तो ठीक ही कह रही हो। भूत के मुंह में सचमुच ही रामनाम नहीं सुहाता।'

तभी अतीश आ पहुंचा।' बोला—'इतनी हंसी किस बात की है ?'

'भूत के मुह मे रामनाम की बात हो रही है। सदीप सोच रहा है कि हमारे चले आने पर हमारे मा-बाप दुखी होंगे।'

अतीश इस मजाक को पकड नहीं सका। उसने गंभीर मुख बनाकर कहा—'देख सदीप, यह मामला अब हंसी में टालने से काम नहीं चलेगा। सीरियस होकर सोचना पड़ेगा। मैं जिस प्रकार वहां रह रहा हूं···।'

इसके बाद पिछली घटना का उसने वर्णन किया।

सदीप का विवेक उसे अंदर से कचोटने लगा। उसे लगा, वह तो बड़े आराम से ही अपने घर मे बैठा बड़े मजे उड़ा रहा है। उन बेचारों की अवस्था पर ध्यान नहीं दे रहा है और योजना को टालता जा रहा है। यह तो एकदम स्वार्थपरता है।

'अच्छा चलो, आज ही मकान खोज डालें।

अतीश थोड़ा इधर-उधर करके बोला—'मैं कह रहा था, तुम्हारे तो अपने दो मकान भाड़े पर चलते है।'

'हमारे नहीं, रायों के ···।'

'तो अब सुनो, रायकोठी मे न सही, इन [illegible] को कहीं किराये वाले मकानों में ही कोई एक फ्लैट दिला दो···।'

'उसकी जरूरत नहीं है। एक बार [illegible] को कहने-भर की देर है।वे कृतार्थ होंगे हम लोगों की बात [illegible] करके।

'अरे तो भाई साहब को [illegible], मेरे भाई।'

'पागल हो क्या ?'

'यह तो तुम्हारी [illegible] है [illegible] तुम्हारे [illegible] कोई अपनी कमाई का [illegible]'

'अतीश, इस बात को रहने दो।' गंभीर होकर संदीप ने कहा, 'फक्कड़ी होने का मतलब तो यह नहीं होता है कि मैं क्षुद्र बनूंगा।'

'मगर मकान पाना क्या आसान है? सुनते तो हैं कि आजकल भगवान मिल जाते हैं, पर मकान नहीं मिलता।'

'ठीक है, मैं गारंटी देता हूं कि एक सप्ताह में मकान जरूर ढूंढ़ लूंगा।'

'मगर उसमें तीन कमरे जरूर होने चाहिए।' सुरभि ने बीच में ही टोका।

संदीप थोड़ा हंसा। बोला—'जरूर।'

3

मकान ढूढ़ने का काम संदीप ने अपने जिम्मे लिया। चाहता तो घर की कार का उपयोग कर सकता था। जरा-सा कहने-भर की देर थी। मुहल्ले मे उसके ऐसे बहुत-से भक्त थे जो उसके लिए यह काम करने में एक मिनट की भी देर नहीं करते, मगर उसने न कार ही ली और न भक्तों से ही कहा। खुद ट्राम, बस या पैदल इधर-उधर घूमकर पता लगाने लगा। परेशान होने लगा।

जहां जाता वही एक जवाब। फिर भी कोशिश करने पर साप की आंख, बाघ का नख तक मिल जाता है, मकान ऐसी क्या बड़ी चीज है। मकान मिला। मगर कलकत्ता में नही, सबर्ब मे। सुरभि गई देख आई, अतीश ने भी वाहवाही दी। मकान संदीप ने खोजा था। इसलिए नम्रता से बोला—'नल नही है, ट्यूबेल का पानी पीना होगा। यह एक असुविधा होगी···।'

'धुत्, वह भी कोई असुविधा है?'

सच, वह कोई बड़ी असुविधा नही थी।

असुविधा हुई दूसरी जगह।
असुविधा हुई अतीश की दीदी को। एक मुट्ठी भात, चार रोटियां एक फालतू-सी कोठरी के लिए महीने में अस्सी रुपये मिलते थे, सो गए। मारे गुस्से से आते समय अतीश से बोली तक नहीं। जीजा जी, न्होंने उस दिन तक कभी उससे बुलाकर एक बात तक नहीं की थी, न्तिम प्रयास करने से नहीं चूके।

'साले साहब को यहां असुविधा क्या थी। पता चलता तो… ।'

'सिर पर और कब तक बोझ बना रहता?'

'मगर सिर ने तो कभी कहा नहीं कि उससे ढोते नहीं पार लग रहा है?'

'अच्छा तो?' अतीश ने और कुछ न कहकर आज्ञा मांगी।

अपर्णा की आंखों में अंधेरा छा गया। उन्होंने धिक्कार के स्वर में कहा—'अकेली, तू क्या अकेली रहेगी?'

'अकेली नहीं। तीन मित्र एक साथ।'

'तेरे मित्र कैसे हैं यह जानना बाकी तो है नहीं? वही दोनों बदमाश लड़के न? इसका मतलब है तू घर छोड़कर जा रही है।'

'अब तुम जो समझो…।'

'और हम दोनों बूढ़ा-बूढ़ी क्या खाएंगे यह नहीं सोचा?'

'बड़ी दीदी, छोटी दीदी या मझली दीदी क्या सोचती हैं?'

'उनकी बात छोड़ दे। उनकी गृहस्थी हो गई।'

'गृहस्थी हमारी भी हो रही है?'

'हो जाती तो कम-से-कम लोगों के सामने मुंह दिखाने लायक तो रहते, तू क्या यही चाहती है कि हम लोग दुनिया में मुंह दिखाने का न रहें?'

'मुंह तो बहुत दिन पहले ही मैंने तुम लोगों का काला कर दिय मां।'

'वह तो ठीक है, मगर पेट नाम की भी तो एक चीज होती है, नहीं जानती?'

'मैं महीने में एक सौ रुपये दे जाऊंगी और फिर तुम्हारी दूसरी भी तो लड़कियां है।'

'वे सब कितना ख्याल रखती है, यह तो तू देख ही रही है।'

'फिर भी वे ही तुम्हारे लिए अच्छी है। उनसे तो तुमने कभी विष मांगा नहीं होगा?'

'लाठी मारकर पैर तोड दो हरामजादी का। जन्म-भर को लंगड़ी बना दो इस पतुरिया को।'

घर में से जगमोहन गरज उठे।

किसी ने बात का उत्तर नहीं दिया।

सुरभि खाली हाथ चली गई।

निशक्ति का यही कानून है, कि घर से खाली हाथ ही आना होगा।

सुरभि ने सोचा, पुरुष बड़े कट्टर होते है। आदमी कितनी छोटी-छोटी चीजें अपनी पसन्द के मुताबिक खरीदकर इकट्ठा किए रहता है। उन्हे छोड आना क्या आसान है?

फिर भी उस गली में से निकलने का अवसर मिला है, यही सोचकर वह नुकसान सह गयी।

अनीश का घर ही नहीं है। छोड आने का सवाल ही नहीं उठता था। बिस्तर और सूटकेस तो रास्ते मे छोडे नही जा सकते। इसीलिए वह अपनी चीजे लेता आया है।

सुरभि और अनीश पास के मुहल्ले मे ही रहते है, इसीलिए प्रायः एक साथ ही घर से निकले। मुलाकात हुई। सुरभि बोली—'तुम तो अपना सब सामान ही लिए जा रहे हो।'

'अरे, कुछ नहीं। सब बेकार की चीजें है। देखने पर तुमको हंसी आएगी।'

सुरभि सोचने लगी हमारा ही क्या राज था? फिर भी नौकरी करके कपड़े जरूर काफी बनवा लिए थे। वे ही छोटी-छोटी चीजें आज नव-

जीवन के पथ पर आगे वढ़ जाने के वाद भी आंखों के सामने छाये [जा]
रही थीं। सुरभि के पैरों को पीछे खींच रही थीं। नये मकान का आकर्षण
आंखों के सामने से ओझल हो गया। वाद में चाहे जितनी चीजें
वह खरीदे, पर जो चीजें छोड़कर जा रही है उनकी कमी क्या कभी
मिटेगी?

उसी अफसोस में पैर जैसे पीछे की ओर भागने लगे।

या फिर और कोई वात है? क्या अपाहिज वाप और कटुभाषिणी
मां का मोह ही उन चीजों का मोह वनकर उसे पीछे खींच रहा है?

4

सुरभि और अतीश आकर नये मकान में प्रविष्ट हुए।

संदीप अभी नहीं आया था।

अचानक सुरभि को लगा वह और अतीश जैसे एक जात के हैं। अतीश के साथ तो मेल खाने का सवाल ही नहीं उठता। किंतु संदीप किसी और ही जात का है। उसी को लेकर ही तो चिंता है।

असली बात यह है कि संदीप के भूल जाने पर भी ये दोनों नहीं भूल पा रहे हैं कि वह बड़े घर का लड़का है। साथ-साथ घूमना और बात है और साथ-साथ रहना दूसरी बात है। इसके अलावा—

ईश्वर जाने सुरभि ने ठीक किया या गलत?

ये सब विचित्र बातें क्या सचमुच चलने लायक हैं? क्या सचमुच मनुष्य के लिए कल्याणकारी हैं? केवल उद्देश्यहीनता का उद्देश्य लेकर क्या कभी दो लड़कों को लेकर एक लड़की ने अथवा एक लड़की को लेकर दो लड़कों ने गृहस्थी बसाई है? ऐसी बात केवल इस देश में ही नहीं, अत्यंत आधुनिक देशों में भी यदि कोई सुने तो स्तब्ध नहीं रह

जाएगा ?

मगर सब बातें न जानते हुए भी माधुरी स्तब्ध रह गई। अविश्वास के स्वर में बोली—'यहां नहीं रहोगे ! दूसरी जगह मकान लिया है !'

'हां, ऐसा ही तो हुआ है।'

'मगर क्यों, क्या जान सकती हूं ?' कठोर स्वर में माधुरी ने पूछा।

'कारण कुछ भी नहीं है। यों ही।' संदीप ने सहज भाव से कहा। गुस्सा करना उनकी नीति के विरुद्ध है।

'ऐसे ही, बेकार में घर छोड़कर चले जाओगे !'

'ओहहोह, इस तरह क्यों सोच रही हैं। समझ लीजिए दूसरी जगह तबादला हो गया।'

'मान लेने से बात नहीं बनती। तुम इस प्रकार चले जाओगे तो लोग क्या कहेंगे ?'

'जानता हूं, कहेंगे लड़का आवारा है, फालतू है।'

'नहीं, ऐसा नहीं कहेंगे।' माधुरी ने कठोर होकर कहा—'कहेंगे भाई-भावज ने सारी संपत्ति का भोग करने के लिए दुर्व्यवहार करके भाई को भगा दिया। तुम्हारी खामखयाली के लिए हम लोगों की निंदा क्यों हो ?'

'ओफ् ! आप ऐसा क्यों सोच रही हैं ? यह तो सभी जानते हैं कि मैं खामख्याली हूं।'

'क्यों तुम खामख्याली हो यह तो नहीं जानते लोग। अब उन्हें कारण भी मिल जाएगा।'

'ऐसे लोगों की बात छोड़ दीजिए।'

'नहीं, लोगों की बात छोड़ देना हमारे लिए संभव नहीं। हमें तो इन्हीं लोगों के बीच रहना है। अगर तुम्हें हमारे साथ नहीं रहना है तो तुम अपना हिस्सा अलग कर लो।'

'क्या ऐसा करने पर ये लोग प्रशंसा करने लगेंगे ?'

'नहीं', माधुरी ने और भी निष्ठुर होकर कहा—'शायद निंदा ही करेंगे। परंतु हमारी नहीं, तुम्हारी।'

'आप समझती क्यों नहीं ? क्या कुछ लड़के वैरागी नहीं हो जाते, किसी मठ में नहीं चले जाते !'

'जाते क्यों नहीं, मगर वे सबके हृदय पर अपने त्याग की मुहर लगा-कर जाते हैं। उनकी निंदा नहीं होती।'

'अच्छी बात है। जिसे लोग त्याग कहते हैं, वही पक्का कर जाता हूं। मैं इस घर के पूर्वज प्रतापराय का अधम पुत्र अपने परिवार के गौरव के उपयुक्त नहीं हूं, अतएव मैं उनकी अर्जित संपत्ति का अधिकारी अपने को नहीं मानता और इस प्रकार अपना हिस्सा उनके पोते उज्ज्वल-दीप के नाम किए जाता हूं।'

'कभी नहीं। मैं अपने लड़के को किसी प्रकार नहीं लेने दूंगी।'

संदीप स्तब्ध रह गया। सोचा था, कुछ भी नहीं लेगा मगर देखता है बात उतनी आसान नहीं है जितनी उसने सोची थी। धीरे से बोला—'लेने क्यों नहीं दीजियेगा? उसके जनेऊ में सभी ने कुछ-न-कुछ दिया उसे। अभी तक मैंने ही उसे कुछ नहीं दिया। समझ लीजिये ···।'

ठीक तो है। उपहार देना बनावटी लगता, इसीलिए संदीप ने उज्ज्वल को कुछ भी नहीं दिया था। अस्वाभाविक संदीप अब अस्वाभाविक रूप से ही अपने भतीजे को एक अस्वाभाविक उपहार दे रहा है तो इसमें किसी को क्या एतराज होना चाहिए? मगर जो बात संदीप के लिए बड़ी सहज लगती है, वह और किसी के लिए उतनी सहज नहीं भी हो सकती है।

संदीप की बात खत्म होने के पहले ही प्रदीप अपने कमरे में से उठकर वहां आ गया। परदे की आड़ होने के कारण प्रदीप को बगल के कमरे में बैठे संदीप ने नहीं देखा था। दीर्घकाय उन्नत व्यक्तित्व वाला प्रदीप उसके सामने आकर खड़ा हो गया। बोला—

'नहीं, उपहार लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। किंतु उपहार भी तो उपहार की तरह होना चाहिए, कर्ज निबटाने जैसा तो नहीं होना चाहिए और अगर दान देने की इच्छा हो तो एक बात नोट कर लो, रायचंद का लड़का कभी दान नहीं लेता।'

संदीप ने सिर नीचा किए हुए कहा—'तो जैसा [illegible]

जए।'

'तो तुम जाओगे ही !' गंभीर निर्लिप्त स्वर।

संदीप को उत्तर देने में समय लगा। कौन जानता था जाने के समय
सी कठिन परीक्षा होगी? वह अपने को हमेशा से बंधनमुक्त मानता था।
के हुए फल की तरह ढेंपी तो गल ही गई है। टप् से चू पड़ता है, बस।

किन्तु कहां पकी है ढेंपी ?

अब उपाय क्या है? रुक जाऊं? पीछे हट जाऊं!

एक मित्र को उसके सिर छिपाने की जगह से निकाल ले आया हूं
और एक लड़की को उसकी सामाजिक मर्यादा से च्युत करके खींच लाया
हूं, अब क्या पीछे हटने का मौका है?

योजना जब तक पूरी कल्पना थी, तब तक तो इसके पक्ष में जितनी
बड़ी-बड़ी बातें की जा सकती थीं की गई, मगर अब युक्ति धुंधली हुई जा
रही है। इसीलिए उत्तर देने में देर हुई। प्रदीप के सामने उसने अपने को
बहुत ही छोटा अनुभव किया। धीरे से बोला—'दो मित्रों के साथ मैंने
एक मकान ले लिया है। वे लोग हमारे आसरे···।'

'तुम्हारे भरोसे?' थोड़ा-सा हंसा प्रदीप, 'अच्छी बात है। तुम मका
का भाड़ा दे देना।'

'वाह ! वे क्यों लेने लगे? यह तो सहायता जैसी चीज हो जाएग
वे गरीब हैं इसका मतलब तो यह नहीं है, कि उनका कोई आत्मसम्म
नहीं है !' संदीप ने इस बार सिर ऊंचा करके कहा।

'यह बात तो है।' प्रदीप ने हंसकर कहा, 'उनके सम्मान की र
करनी ही होगी।' माधुरी अभी तक चुप थी। इस बार बोल पड़ी—
के सम्मान की बात तो तुम्हें याद रही देवर जी, मगर भाई के सम्म
बात क्या एक पल के लिए भी तुम्हें नहीं याद रही?'

'ओह माधुरी, रुको। जब वह किसी प्रकार रुक नहीं सकता
जाने दो। हमारी-तुम्हारी निंदा होगी यह कोई बड़ी बात नहीं है
अपना पता दे जाना।'

संदीप ने बड़ी मुश्किल से कहा—'मैं क्या फिर आऊंगा न

बीच में आता रहूंगा।'

'अच्छा, बीच-बीच आओगे? फिर क्या बात है? जिस दिन घूमने आओगे उसी दिन पता ले लेंगे।' कहकर पर्दा उठाकर प्रदीप दूसरे कमरे में चला गया। सदीप को लगा प्रदीप उसके सामने एक लोहे की दीवार खड़ी कर गया।

यह दीवार कैसे टूटेगी? सोचा था भाभी को बताकर ही खिसक आऊंगा। फिर किसी दिन घूमने आने पर सब सहज कर लूंगा। जाने कितने लड़के इस तरह अपने घर से अलग रहते हैं। उसके मित्रों में से ही कई लोग मां-बाप के रहते हुए भी अलग रहते हैं। वे कोई पाप या अपराध कर रहे है ऐसा तो नहीं लग रहा उसे?

किंतु उसे स्वयं ऐसा लग रहा है?

वह? कुछ नहीं। सामयिक मोह है। बाद में सब ठीक हो जाएगा, और बहुत तरह से उस दिन सदीप ने अपने को तैयार कर लिया। इतनी मुश्किल के बाद तो योजना साकार होने जा रही है। जीवन का एक नया प्रयोग करने जा रहे हैं वे लोग। अगर उनकी योजना सफल हो गई तो परिवर्ती समाज उनका ऋणी होगा।

सदीप जब पहुंचा तो उसे देखा, उन दोनों ने करीब-करीब गृहस्थी जमा ली है। उसने देखा, अतीश के मुंह पर एक अनिर्वचनीय प्रकाश है और सुरभि के चेहरे पर एक विचित्र और मधुर लावण्य।

आश्चर्य।

मानता हूं अतीश का यहां कुछ नहीं था, मगर सुरभि का तो घर-द्वार, मां-बाप सभी कुछ था। वह तो सब कुछ छोड़कर आई है!

फिर?

अपने को जितना भी कठोर और निर्मम सदीप क्यों न समझे, परंतु अंदर से वह भी कम भावुक नहीं है। और कोई बात नहीं है, राय परिवार की आबहवा का असर है। इसको समाप्त करना होगा, संदीप ने सोचा।

अच्छा नहीं लग रहा है। किसे? मन को। मन क्या चीज है?

छि:, इससे हास्यकर बात क्या हो सकती है, अतएव भयंकर उत्साह

या जाय।

'क्यों भई, तुम लोगों ने तो देख रहा हूं, सब कुछ ठीक-ठाक कर लिया मालूम होता है गरम चाय तैयार है और साथ में शायद फ्राई या र कुछ…।'

'आहा, टके की टोपी, रुपया पकड़ाई। चाय तो हम लोगों ने खरीद कर पी ली है।'

'कमाल है, खाना-पीना सब खतम। अच्छी बात है। हमारे हिस्से में एक कप चाय कम करके लिखी जाए।'

'ठीक है।'

'तब ! खाना-वाना ?'

'वह भी आज होटल में।'

'हत्तेरे की ! कहां सोचता-सोचता आ रहा था कि देर करके जा रहा हूं। जाते ही गरम-गरम तैयार मिलेगा और तुमने होटल दिखा दिया।'

अतीश हंसकर बोला—'सच पूछो भाई संदीप तो होटल मैंने ही खाया है। श्रीमती सुरभि का भोजन। पता नहीं मुंह में पड़ेगा या नहीं।

'देखो, इस तरह अपमान करने पर तो कभी खाना बनाऊंगी ही नहीं। जो मर्जी हो बनाना और खाना।'

'हां-हां-हां, चिढ़ती क्यों हो। तुम्हीं तो इस समय हम लोगों के लिए अन्नपूर्णा हो।'

'रहने दो, इतनी देर कैसे हुई ! मैंने तो सोचा हम लोगों को पेड़ प चढ़ाकर आप घर का मजा ले रहे हैं। हम लोगों को इस मच्छर-वृन्दाव में पठाकर अपने हाजरा रोड की अट्टालिका में आमोद प्रमोद…।'

'हमारे बारे में यही धारणा है तुम लोगों की ? छि:छि:, अतीश, क्या सुन रहा हूं ?

अतीश ने हंसकर कहा था—'मेरी नहीं, उसकी धारणा है।'

बात सच है। सुरभि ने ही संदेह प्रकट किया था।

कहा था—'अतीश, मेरा मन कह रहा है, वह आयेगा नहीं।

'नहीं आयेगा।'

'हां, मुझे तो ऐसा ही लग रहा है। बाद में आकर कहेगा, भाई साहब नहीं छोड़ा।'

'हट्, वह क्या ऐसा है?'

'देखो, आदमी के मन का कोई ठिकाना नहीं। उसकी हालत कोई हम सी तो है नहीं। घर का इतना आराम छोड़कर—जानते हो उसके घर रुई का गद्दा नहीं है, सब डनलपिल्लो के गद्दे हैं।'

'गजब-रे-गजब। उसकी हांडी का भात तुमने कैसे जाना? वह तो जाता नहीं है। तुम्हें ये खबरें आखिर देता कौन है? उस दिन तुम्हीं तो बता रही थीं कि उसके दो-दो मकान किराये पर चलते हैं। उसकी दोनों बहनें ये बड़ी-बड़ी कारों में चढ़कर आती-जाती हैं। आज बिछौने की खबर बता रही हो। इन बातों की खबर कैसे हो जाती है तुम्हें?'

'लगाना पड़ता है जनाब, लगाना पड़ता है। कोशिश करनी पड़ती है। खबरें कोई अपने-आप चलकर मेरे पास नहीं पहुंच जाती हैं। किसी विषय में अंधकार में रहना मुझे नहीं भाता।'

'ऐसा? तब तो हमारे बारे में भी तुमने पता लगाया होगा?'

सुरभि हंस पड़ी। बोली—'तो तुमने क्या सोचा था? तुम्हारी उन जनीया दीदी जी के पास एक दिन सनलाइट साबुन का प्रचार करने गई थी....'

सच, सुरभि एक दिन गई थी वहां। मगर बहुत दिन पहले। जब नई-नई जान-पहचान थी। बड़ी सफाई से उसने अतीश के मकान का पता जान लिया था। वैसे भी तो कम्पनी की नौकरी में हजार घरों में आना-जाना करना पड़ता है। यही तो उसकी नौकरी है।

जान-बूझकर ही अतीश के घर गई थी। अधिकांश में कौतूहल ही था और कुछ अपनी मंगलभावना भी थी कि जिसके साथ मिल-जुल रही हूं, वे कैसे लोग हैं यह जान लेना अच्छा होगा।

मगर वहां तो अतीश की मौसेरी बहन ने करीब-करीब उसके मुंह पर ही दरवाजा बंद कर दिया। जल-भुनकर बोली थी—'सनलाइट की अच्छाई-बुराई अब तुमसे सीखना होगा क्या? तुम्हारी पैदाइश

नलाइट का उपयोग कर रही हूं।'

फर भी सुरभि ने साहस करके कह दिया था—'हो सकता है आपके
वाले कमरे के किरायेदार लें ?'

'यह किरायेदार तुमने कहा देख लिया ?'

'वो बाहर जो ताला झूल रहा है, उसी कारण हमने सोचा…।'
रभि ने एकदम देवी की तरह मुंह बनाकर कहा, जैसे वह एकदम बच्चा
, निष्पाप और भोली-भाली।

'उस घर में किरायेदार रहता है यह बात तुमसे किसी ने कही है ?'
बहुत संदिग्ध भाव से दीदी ने पूछा था।

नहीं-नहीं। ऐसे ही कह रही थी। दरवाजे पर ताला झूल रहा है न,
उसी से।'

'वाह रे दिमाग, दरवाजे पर ताला झूलते देखा तो बस समझ लिया
कोई किरायेदार रहता है। किराये पर मैं कभी भी मकान नहीं देती,
समझीं ? उसमें मेरा छोटा भाई रहता है, खाता है, सोता है और जब
इच्छा हो घूमने निकल जाता है। और कमरे में ताला झुका जाता है। वह
साबुन लेकर कपड़ा साफ करने बैठेगा ? जाओ-जाओ, यहां से कोई लाभ
नहीं होगा। यहां जितनी भी महिलाएं रहती हैं सभी खोजकर सस्ता साबुन
लाती हैं और उसी का उपयोग करती हैं, समझीं ? इस मुहल्ले में कोई
लाभ नहीं होगा।'

अतीश के विषय में उसकी जानकारी का यही आधार है।

मगर संदीप की और बात है। संदीप के घर वह अपने-आप नहीं ग
उसकी मंझली बहन की ननद का मकान वहीं पर हाजरा रोड में
अचानक उसने उस घर में जाना आरंभ किया।

'कंपनी का नमूना कहकर पहले कुछ चीजें उन्हें दीं। फिर उ
लगी गप करने। उनको भी नोकरी करने वाली इस लड़की के सं
कौतूहल था। भले ही वह नोकरी रास्ते-रास्ते घूमने की हो, म
में चूल्हा-चौका लेकर बैठे रहने से तो अच्छा है। घुमावदार साड़ी

त्रिपदी

कर वालों की दो चोटी झुलाकर घर से निकलने का मौका तो मिलता है।

इसीलिए गप अच्छा ही जमता था।

सुरभि ने एक दिन कहा था—'अच्छा तो है। एक बड़े आदमी के मकान के सामने रहती है, हमारा खरीदार बना दीजिए न ?'

'बाप रे, उनके साथ हमारा क्या वास्ता ?'

'उससे क्या ? पड़ोसी तो है ? अपनी जाति को तो है ?'

'हां, पड़ोसी—जैसे गरुड़ पक्षियों का स्वजाति होता है।'

और फिर ननद ने उसके बारे में बहुत-सी बातें बताईं। भले उसने भी केवल सुन रखा हो, मगर बात तो ऐसे उसने की जैसे उसने स्वयं देखा हो। 'बाप रे, उस घर में रुई का एक भी गद्दा नहीं है। सब डनलपिल्लो है। रोज ही पकवान बनता है, मालकिन तो हमेशा सिल्क की साड़ी ही पहनती हैं इत्यादि-इत्यादि। और फिर यह भी बताया था कि मालिक का भाई कुछ ऐसा ही-सा है। घर में दो-दो गाड़ी हैं, फिर भी चप्पल फट-फटाता घूमता है। ट्राम-बस में घूमता-फिरता है। अच्छा खाना उसे पसंद ही नहीं है,' वगैरह-वगैरह।

फिर भी आते-जाते कोठी का सुरभि ने अच्छी तरह निरीक्षण किया है। इसी मकान में सदीप रहता है। उसका स्वभाव जैसा भी विचित्र हो, मगर जब इतनी विलासिता में रहता है तो जरूर ही—वह कितना त्यागी कोई होगा।

सदीप को जब भी देखती उसकी कोठी का चित्र उसकी आंखों के सामने नाचने लगता, किंतु सदीप की बोल-चाल और उसका आचार-व्यवहार उसकी दुविधा को समाप्त कर देता।

···किंतु ये सब तो पहले की बातें हैं।

फिर भी आज अचानक ही वे सब बातें उसे याद पड़ गईं। उसने कहा—'इतना ऐश-आराम छोड़कर वह आ भी सकेगा ?'

अतीश इस मामले में निर्द्वंद्व है।

ला—'उतना जोर है उसमें।'
फिर आ क्यों नहीं रही है?'
आ जाएगा।' कहकर अतीश रहस्यमय हंसी हंसा, 'क्या किसी और
होने से तुम्हें डर लग रहा है?'

'डर ?'

'मुंह देखने से तो यही लग रहा है?'

'जी नहीं, श्रीमन्, डर नाम की वस्तु इस शरीर में होती तो इतना
मेला सिर पर उठाकर और अपना घर-द्वार छोड़कर अकेली दो-दो
जवान आदमियों के साथ रहने नहीं चली आती। जानते नहीं, दो में
अकेली तीन में हाट। हाट के बीच डर किस बात का?'

'अरे, अचानक इतना बड़ा भाषण?'

सुनकर सुरभि ने भौंहें टेढ़ी की थीं।

'नाराज हो रही हो? अरे जरा-सा मजाक भी कोई नहीं कर सकता
क्या?'

सुरभि की भौंहें सीधी हो आई थीं। उसने फिर गंभीर होकर अपनी
बात दुहराई थी।

'संदीप नहीं आएगा।'

'अरे, आएगा कैसे नहीं। कान पकड़कर लाऊंगा।'

'न हो तब तक हम लोग सामान ही ठीक-ठीक सजा लें।'

मगर सजाने को वहां धरा भी क्या था? असबाब के नाम पर ती
कमरों में तीन वेंत की कुर्सियां और तीन निवाड़ की खाटों के अतिरि
तीन छोटी अलमारियां थीं, बस।

संदीप इन सभी चीजों को खरीदकर रख गया था।

खाली आलमारी की ओर देखते ही लगा वह सुरभि का मजाक
रही है, मुंह फाड़कर। छोड़कर आए भरे मुंह वाले बावस की याव
सुरभि के मन को मथने लगी। अगर घर में पड़ी साड़ियां और ब्ला
इस आलमारी में सजा दी जातीं थाक की थाक···। ओह, यदि इन
की बात में वह न आयी होती? मगर ले आते लज्जा लगती। ि

जगमोहन और अपर्णा की इस छोटी लड़की में लज्जा नाम की कोई चीज है क्या ? नहीं जी । राम भजिए । भय, लज्जा जैसी कोई चीज उसमें है ही नहीं । उसके मित्र अगर उसे इसके लिए मजबूर न करते तो वह निश्चय ही वे चीजें लेकर आती ।

मामूली-से कुछ कपड़ों के लिए इतनी माया ! जिसके लिए चिड़िया बनकर घर में उड़ जाने की तबियत कर रही है उसकी । जा पाती तो क्या सचमुच वह चली जाती ! जाकर क्या देखती ! क्या अपर्णा और जगमोहन अपनी जरूरत की चीजें पाकर संतुष्ट हो गये होंगे ! उनके अपमान की ज्वाला शांत हो गई होगी ! नहीं, नहीं, यह असंभव है । ऐसा कर पाते तो बहुत दिन पहले ही कर लेते । इतना उनका अपमान सुरभि ने क्या कभी किया था ? वाह, सुरभि ने सचमुच मा-बाप का सब कर्ज उतार दिया था । दरिद्रता से असमय ही बूढ़े हो गये अपने मा-बाप की पीठ पर अपमान का चाबुक खूब कसकर लगा आई थी ।

सुरभि ने प्रतिपल जिस विकलता के वातावरण से जिस मुक्ति की कामना की थी उसकी याद आज उसे पल-भर को भी नहीं आई । नर्म बिस्तर पर चुप बैठी रह गई और उसकी आंखों के सामने वही दरिद्र घर तैरता रहा ।

जाने कितनी देर बाद अतीश की बात पर उसका ध्यान टूटा । 'अरे, क्या बात है, ध्यानी बुद्ध होकर बैठी हुई हो ?'

उसी समय सुरभि ने घोषणा की थी—'सदीप नहीं आयेगा ।'

कुछ ही देर बाद सदीप आ गया ।

अतीश सुरभि की ओर देखकर मुस्कराया । सदीप ने उसकी ओर देखा । सुरभि ने अतीश के हंसने का कारण बताया ।

'छिः सुरभि, तुम मेरे बारे में ऐसा सोच सकीं ?'

'सोचा तो क्या ? बहुत बार आखिर समय आदमी का मन बदल जाता है ।'

'हां, साधारण आदमी का । हम लोगों जैसे असाधारण आदमियों का नहीं ।'

'आहाहा, देखती हूं जनाव के घमंड की सीमा नहीं।' सुरभि ने तिरछी निगाह से उसे देखते हुए कहा—'देखना कहीं आखिर तक नीले गीदड़ की हालत न हो।'

'अतीश ने वह तिरछी निगाह देखी ?'

'और नहीं तो क्या ? देखता हूं पक्षपात अभी से शुरू हो गया।'

'ताज्जुब है। सुनती आ रही थी, पुरुष जाति वड़ी उदार होती है। देखती हूं वे तो इस मामले में औरतों को भी मात दे सकते हैं।'

'वह भी आप लोगों की ही कृपा है, देवी।' हंसकर कहा संदीप ने, 'यह पक्षपात और कटाक्षपात ही उस डाह को जन्म देता है।'

'अच्छा, उस विषय को रहने दो। वह तो अनादि काल से तर्क का विषय बना हुआ है। इधर पेट का संतुलन बनाए रखने का कोई उपाय होना चाहिए। अब और संभालना कठिन हो रहा है।'

'बाप रे, अभी तो चाय पी है तुमने। अरे, जैसे राक्षसों से पाला पड़ गया हमारा।' और हंस पड़ी वह। वे दोनों भी हंसे।

इसी प्रकार हास-परिहास में थोड़ा समय कट गया। बेंत की चार कुर्सियां जो संदीप खरीदकर लाया था, उसी पर बैठकर काफी देर तक उनकी बातचीत चलती रही। फिर कपड़े पहनकर वे होटल की ओर चले।

'तो फिर ऐसे ही चले न, बुरा क्या है ?' संदीप ने कहा, 'नून, तेल और चूल्हा-चौके का झमेला पालने से क्या फायदा ?'

'वाह रे, मैंने क्या-क्या प्लान बनाया है और तुम एक कलम से सब खारिज किए दे रहे हो।' सुरभि झल्ला उठी। 'देखना सब इंतजाम कैसा बढ़िया करती हूं।'

'इसका मतलब है तुम चूल्हा-चौका में ही सारा दिन फंसी रहना चाहती हो ?'

'कभी नहीं। सब करूंगी।'

सुरभि मन ही मन सोचने लगी। उद्देश्यहीन जीवन बिताने का मत-लब यह तो नहीं होता कि कुछ किया ही न जाय। मैं सब करूंगी। खूब

पैसा जमा करूंगी। दरिद्रता में तो सारा जीवन ही बीत गया। इन लोगों ने कहा है कि अपनी कमाई का सारा पैसा हमारे हाथ में देंगे। पता नहीं ये लोग कितना पैसा देंगे? वह जो भी दें, उसी से हमारे हाथ में सोना बरसेगा। अपनी तनख्वाह में से मां को एक सौ रुपया दे दूंगी। जब कह दिया है, तो न देना अमानुषिकता होगी। मगर बाकी का एक सौ अस्सी रुपया मैं जमा करूंगी। जरूर जमा करूंगी। अपने लिए कपड़े तो मैं घर खर्च में से निकाल लूंगी।

पैसे का मूल्य सुरभि जानती है। इसीलिए पैसे के बारे में ही उसे सब से पहले चिंता हुई। उसने देखा था कैसा करुण चेहरा बनाकर मां उसके सामने हाथ फैलाकर रुपया लेती थी। इतना अपमान स्वीकार करके भी उन्हें लेना पड़ता था। सुरभि सोचती है—'हे ईश्वर, मुझे मां की हालत में कभी मत डालना।'

सुरभि सोचती है, वह सब बाजार-हाट अपने हाथों करेगी। इन बेफिक्रों के ऊपर कुछ भी नहीं छोड़ेगी। इन्हें किसी चीज के सिर-पैर का पता नहीं है। माना कि संदीप लखपति घर का है, मगर गरीब घर का अनीश ही कौन बड़ा हिसाबी है? चचेरी बहन के घर अस्सी रुपये देकर कैसा बेकार का खाना खाता था। दीदी भले मुंह से जहर उगलती, मगर जरा-सा भी उसका ख्याल रखती तो वह उनके दरवाजे से हिलता भी नहीं। मैं इन दोनों को वश में रखूंगी। पैसों का हिसाब तो ये मांगेंगे ही नहीं। और घर छोड़कर आने का उसका दुःख कम हो गया।

सुरभि का मन एकदम हल्का हो गया।

होटल से खाकर लौटने पर एक बार उन लोगों ने फिर कुर्सियों पर आसन जमाया। और तभी उन्हें याद आया कि खाने के बाद एक और कार्यक्रम होता है, जिसे 'सोना' कहते हैं।

'अच्छा, अब सो जाया जाय।' संदीप ने कहा।

'सोना होगा भी कैसे?' सुरभि ने झनककर कहा, 'ऐसा भी क्या हुकुम है तुम लोगों का कि एक तकिया तक नहीं लाने दिया। सिर के नीचे तकिया न होने से क्या नींद आती है?'

प हंस पड़ा। बोला—'जीवन की परीक्षा का यह नया रस हजम
अभी आपको समय लगेगा महाशया। आज हमें अपनी इन निवाड़
टों की परीक्षा करनी है। देखें नींद जीतती है या निवाड़ की खाट!
ीजिये, नींद न आये तो बुरा क्या है? बिना सोये सारी रात काट
ोनी बड़ी चीज क्या हो सकती है? जीवन को अनुभव करने और
को भली प्रकार समझने का इससे अच्छा कौन-सा मौका हो
ना है?'

'अरे वाह रे दार्शनिक की पूंछ।' सुरभि ने आंखें नचाकर कहा।

अतीश ने संकोच के साथ कहा—'हमारी राजशय्या, फेंक पाने लायक जगह के अभाव में, हमारे साथ चली आई है। श्रीमती सुरभि देवी यदि दया करके उसका उपयोग करें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।'

संदीप भी हंसकर बोला—'अतीश, वैसे नहीं। इस तरह कह—हे बांधवी, यदि एक तुच्छ से तकिये के बिना तुम्हारी सुखनिशा महानिशा बनने जा रही है तो तुम्हें चादर-गद्दा समेत सारा बिस्तर दान करता हूं।'

'मैं इतना अपमान सहकर कोई चीज नहीं लेती।'

'सुरभि,' संदीप ने कहा, 'तुम्हें अभी भी बहुत कुछ सीखना बाकी है। 'मान-अपमान' बड़ी बेकार-सी चीज है। उसे झाड़ न सकी तो हमारा यह 'एक्सपेरिमेंट' सफल कैसे होगा?'

ठीक उसी समय संदीप के बड़े भाई प्रदीप ने भी ऐसी ही एक बात
कही—'मान-अपमान की बात भूल जाओ, माधुरी। बेकार अपना म
दुखाने से क्या फायदा? एक बेवकूफ लड़का अगर बेवकूफी करे, भले
वह कितनी ही बड़ी हो, तो उससे तुम्हारी बेइज्जती क्या होगी?'

किंतु माधुरी क्या सिर्फ अपमान की बात से विचलित हो रही
वह तो एक दिखावा था। असल बात तो यह थी कि संदीप का
कमरा देखकर उसके प्राणों में एक अव्यक्त यंत्रणा कसकने लगती
यों कमरा तो प्राय: खाली ही रहता था। संदीप कोई सारा दिन उस
तो नहीं रहता था। फिर भी उस कमरे में वह रहता है, इसी बात

कमरा भरा-भरा-सा लगता था। वह सोचती, सदीप का व्यवहार असह्य है, जब उसे किसी की परवाह नहीं तो माधुरी को ही क्या पड़ी है कि वह उसके नाम को रोए। किन्तु अब उसे लगता है, कि जो स्नेहधारा उसके मन के किसी कोने में सदीप की उपस्थिति में दबी रहती थी, अनुपस्थिति में बालू के भीतर से सैकड़ों धाराओं में वह निकली है।

ससुराल में आने के बाद से ही उसने जिस खामख्याली लड़के को घर में देखा, जो राजेश्वर होने पर भी उदासीन, सब कुछ का हकदार होते हुए भी पड़ोसी के समान घर में रहता हो, जिसने कभी जिद करके कुछ मांगा नहीं, जिसे कभी किसी नौकर से भी ऊंचे गले से बोलते नहीं सुना गया, उस पर माधुरी का स्नेह नहीं तो किस पर ढलेगा? उसकी बार-बार की अवहेलना से माधुरी का ऊपर से उदासीन हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उमर में भी उससे पांच-छः बरस ही बड़ी है माधुरी, पर बड़ी तो है, इसीलिए अपने बड़प्पन की भावना को छोड़कर वह अपने-आप उसके निकट नहीं आ सकी। और आज उसी मन की ज्वाला को उसने पति के सामने स्वयं अपने भी—अपमान की ज्वाला कहकर प्रस्तुत किया।

नाराज होकर बोली—'क्यों, मान-अपमान की बात क्यों भूल जाऊं?'

दो-चार बार इधर से उधर चहलकदमी करके प्रदीप ने कहा—'भूलना ही होगा। अकारण उसके लिए कष्ट पाने का लाभ भी क्या है?'

'और लोग जब पूछेंगे कि वह क्यों चला गया, तो क्या कहेंगे?'

'लोगों की बात का उत्तर क्या कोई भला आदमी आज तक दे पाया है? और बहुत परेशान करें तो कहना होगा—जरूर कोई कारण था।'

'तभी तो लोग और सदेह करेंगे' माधुरी ने भरे गले से कहा—'लोग सोचेंगे हमारा व्यवहार खराब था, इसीलिए...।'

प्रदीप हंसकर बोला—'तुम कोई उपयुक्त उत्तर देकर ही क्या उसके सदेह को समाप्त कर सकोगी?'

'किंतु वह ऐसा करता ही क्यों है?' कहकर माधुरी ने मुंह दूसरी ओर घुमा लिया।

प्रदीप थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा, फिर धीरे ...
का दुर्भाग्य उससे ऐसा कराता है, माधुरी।'

'ऐसा सोचकर तुम अपने को संतोष दे रहे हो, मैं जानती हूं। मगर ...ना करके क्या उसे सुख मिलेगा?'

'ईश्वर से यही प्रार्थना करूंगा कि उसे सुख मिले। कभी उसे अपार दुःख में न पड़ना पड़े।'

काफी रात होने पर प्रदीप को सहसा नींद आ गई। और उसी कमरे की दूसरी दीवार के पास माधुरी जागती हुई पड़ी रही। वह चकित थी कि और दिन तो माधुरी ही पहले सो जाती है। प्रदीप कुछ पढ़ता-लिखता रहता है। किन्तु आज सोते हुए प्रदीप की सांस ऐसी क्यों लग रही है जैसे वह सोया न हो, जैसे उसकी सांस एक अशरीरी आत्मा की तरह सारे घर में भटक रही हो।

बहुत रात बीतने पर माधुरी को जाने कैसा एक भय-सा लगने लगा। वह जाकर बगल वाले कमरे में उज्ज्वलदीप के पास बच्चे से हटकर सो रही। वह बहुत धीरे से उसके कमरे में गई थी, जिससे उसकी नींद टूट न जाय। मगर उसकी नींद बिना तोड़े वह ऐसा न कर सकी! लड़का जाग गया था शायद पहले से ही जाग रहा था। मां से लिपटकर धीरे से बोला, 'मा, रात में चाचा ने क्या खाया होगा, कहां सोये होंगे वे?'

5

शय्या ? हां, वही राजशय्या थी।

वही निवाड की खाट, नई खरीदी हुई।

उह, बैठे रहने मे ही क्या एतराज है ?

सच, सदीप की इच्छा कर रही थी, वह यो ही सारी रात बैठा रहे। पीठ टिकाने की बात उसे याद ही नही रही। बाहर चारो ओर जब सब कुछ नीरव हो गया तब भी उसके कानो मे वही एक गभीर स्वर बार-बार प्रतिध्वनित होने लगा —'उसे आने दो, उसे आने—उसे आने—उसे···।'

यह कठ स्वर किसका है ?

सदीप के बडे भाई प्रदीप का।

क्या ऐसा ही गला है उनका ?

यह मकान किसका है ? सदीप का ? सदीप ने अपने रहने के लिए स्वयं इसे पसंद किया तब उसे इतना खराब क्यो लग रहा है ? विदेशयात्रा के समय तो बहुत बार इससे भी खराब स्थानो पर उसे रातें बितानी पडी हैं—किसी धर्मशाला में, वेटिंग रूम मे, सस्ते होटल मे या ऐसी ही किसी

गह, किंतु ऐसी अनुभूति तो किसी दिन नहीं हुई उसे।
ोनों तीन कमरों में सोए हैं।
अतीश सोच रहा है, दीदी तो जरूर सौ चिट्ठियों की एक चिट्ठी पिता
को लिखेंगी। उसके बाद क्या होगा, कहा नहीं जा सकता। अगर
जी उनकी खोज-खबर लेने यहां तक आ पहुंचे तो? अगर आकर देखा
उनका लड़का यह अद्भुत गृहस्थी बसाकर बैठा हुआ है?
अवश्य ही खुशी से गद्गद नहीं होंगे।

मगर अतीश के लिए भय से विचलित होने वाली कोई बात नहीं
है। फिर भी वह सोच रहा है, वह क्या कहेगा? सुरभि के सम्मान की
रक्षा किस प्रकार कर सकेगा? लोग तो खराब छोड़कर और कुछ कहेंगे
नहीं। नाक-भौं सिकोड़कर कहेंगे—'छिः-छिः, तुम दोनों एक ही गिलास
में पानी पी रहे हो? तुम्हें दूसरा गिलास नहीं मिला?'

और अगर उनसे वास्तविक बात कही जाए तो वे हो-हो करके हंस
पड़ेंगे, कहेंगे—'हां-हां, हाथ में पानी का गिलास लेकर तुम लोग निर्जला
एकादशी का व्रत कर रहे हो? हा-हा-हा-हा•••।'

अतीश सोचता है, वे यदि व्यंग्य करें तो उन्हें ही दोष नहीं दिया जा
सकता। पानी का घड़ा सामने रखकर वे प्यास से मरेंगे, ऐसी अवास्तविक
कल्पना उनकी ही कैसे? क्या यह संभव है?

फिर सोचा, दलील तो है। प्यास लगने पर पानी पीया जा सकता है।
मगर पहले कौन प्यास बुझाएगा?

वह भी बिना किसी अनुष्ठान के। छिः, ऐसा क्या संभव है?

सुरभि को भी नींद नहीं आ रही थी। अतीश के बिछौने के आर
के बावजूद। वह सोच रही थी—हम लोगों ने क्या सोचा था, और
क्या रहा है? सोचा था, जिस तरह विदेश में भ्रमण करते समय अ
काम चला लिया जाता है, उसी प्रकार अपना काम चला लिया जा
किंतु एक बेला में ही पता चल गया, ऐसे नहीं चलेगा। गृहस्थी में
चीजें लगती हैं।

सुरभि की पुरानी गृहस्थी में दैनिक वस्तुओं का अभाव थ

स्थायी वस्तुओं का अभाव नहीं था। असुविधा में भी काम चला लेने का उसे अभ्यास था। इसीलिए कौन-कौन-सी चीजें आवश्यक हैं, किन चीजों के बिना काम नहीं चलेगा, उनकी सूची वह मन-ही-मन बना रही थी। अन्त में जब उन्हें याद रखना सम्भव नहीं रह गया, तब उठकर उसने लाइट जलाई और सोचा, बैठकर लिख डालूं।

किंतु लाइट जलाने के बाद उसे अपनी गलती का पता चला। लिखेगी कैसे? हैंडबैग में रखकर कलम तो लाई थी, पर कागज? दीवार पर लिख डालूं? मगर उसमें तो कलम नष्ट हो जाएगी। कुछ भी न लाने के लिए राजी हो जाने की अपनी बेवकूफी पर उसका जी जल उठा।

विफल क्रोध में थोड़ी देर वह चुप रही। फिर सोचा—महीने के अन्त में जब घर रुपया देने जाएगी तो सब चीजें ले आएगी।

मगर अभी?

एक टुकड़ा कागज के बिना मुंह पीट लेने का मन कर रहा है। अगर कोई उसे असहिष्णु कहे तो यह उसकी भूल होगी। बड़ी चीजों का अभाव सहा जा सकता है, पर छोटी-सी चीज न मिलने पर कभी-कभी आदमी पागल हो जाता है। नये मकान में अगर उसके पास खाट और कुर्सी न होती तो वे जमीन पर सोते-बैठते, फिर भी उन्हें असुविधा नहीं होती। यह तो होता ही है। मगर काम पड़ने पर एक टुकड़ा कागज न मिले यह भी कोई बात हुई?

बन्द दरवाजे की सिटकनी खोलकर बाहर आ गई। हर्ज ही क्या है? क्या होगा? अतीश बुद्धिमान है। वह अपनी चीजें लेकर आया है।

दरवाजा खोलते ही अतीश चकित हो गया। सोचा था, सदीप है। सोचा—ठक्-ठक् करने के लिए सदीप डांट पिलाएगा। कहेगा—'धक्का नहीं देते बन रहा था। मेरे साथ यह नजाकत नहीं चलेगी। ऐसी मृदु भद्रता मुझे बर्दाश्त नहीं होती।'

किंतु उसे स्वयं धक्का लगा।

दरवाजा खोलते ही वह अवाक् होकर बोला—'क्या बात है?'

र देने में गला कांपेगा ५९ तो उनकी नीति नहीं है, फिर भी

का गला कांपा।

ागज का एक मामूली-सा टुकड़ा मांगने में उसका गला कांप गया।

ातीश और भी अधिक चकित हो गया।

'इतनी रात को कागज का क्या होगा?'

'है जरूरत।'

कागज दिया अतीश ने। देते समय मजाक के स्वर में वोला—'सोचा,

यद नई जगह है। रात को डर लग रहा है। इसीलिए कमरे में आश्रय

ने आ रही हो...।'

'धत्, असभ्य कहीं का।'

सुरभि की यह भंगिमा तो एकदम नई है। अतीश इसके लिए

प्रस्तुत नहीं था। सुरभि के स्वर का झंकार उसके कानों में गूंजने

लगा।

कमरे में लौटकर सुरभि को भी फिर आवश्यक चीजों की सूची

बनाने का उत्साह न रहा, इतनी देर तक क्या-क्या सोचा था, कुछ याद

नहीं पड़ रहा था। एक अस्वाभाविक विह्वलता उसे परवश किये दे

ही थी। रात में अचानक नींद टूटने पर, इस कमरे से उस कमरे में आने-

ाने के वाद, क्या ऐसी शिथिलता आती है?

वहुत देर वाद सुरभि स्वाभाविक हो सकी। जाने क्या सोचा होगा

अतीश ने? कागज एक वहाना था, यह तो नहीं सोच रहा होगा वह?

और सुरभि के मन की दुर्वलता का पता पाकर कहीं वह मुस्करा तो नहीं

रहा है?

नहीं, नहीं, वहुत सावधानी से चलना होगा।

इन दोनों भूतों को किसी प्रकार यह मौका नहीं देना है कि वे स

सुरभि उनसे कमजोर है, वह हार जाएगी। यह रात का जागना

चलेगा। रात वड़ी भयानक चीज है। रात के सामने आदमी असह

जाता है। रात जैसे आदमी को अपनी मुट्ठी में जकड़ लेती है। व

आदमी को अपनी इच्छानुसार उल्टा-सीधा नचा सकती है।

जिन्दी

विजयिनी रात से निस्तार पाने का एक ही उपाय है, नींद। गहरी नींद की चिकनी तलहटी में डूब जाना। उसीकी साधना में उसे सिद्ध होना होगा। सोचा सुरभि ने। फिर भी नींद तो नहीं ही आई।

सवेरे के आलोक का रूप कुछ और ही तरह का होता है। इस आलोक से दीप्त प्रकृति के बीच, उपनगर के उस खुले वातावरण के बीच नये बने मकान के बरामदे में चाय पीते-पीते लगा, जैसे कहीं बाहर घूमने आए हों।

आज छुट्टी का दिन है। कोई जल्दी नहीं है कम-से-कम संदीप को। इसीलिए वह जमकर गपबाजी करने बैठा है। किंतु दूसरे दो आदमियों का हृदय चंचल है।

'क्या हुआ? जैसे तुम लोगों का मन ही नहीं लग रहा है।'

'नहीं, ऐसी बात तो नहीं है। मगर सोचता था, थोड़ा घूम आते हम लोग, तो कैसा रहता?'

'क्यों, अखबार खरीदने या सिगरेट खत्म हो गई है?'

'नहीं, यह बात नहीं है। मगर कुछ खरीद-फरोख्त तो करनी होगी?'

'खरीद-फरोख्त?' संदीप आंख फाड़कर बोला, 'और क्या खरीदना है? कुर्सी है, खाट है, चाय का सब सामान है, जो सबसे मुख्य चीज है। इसके बाद होटल।'

'हां, रोज-रोज होटल। पागल हो गए हो क्या?' झनककर सुरभि ने कहा।

'यहां तो कितने लोग सारा जीवन होटल के भरोसे काट देते हैं।'

'रहने दो, यह इंग्लैंड नहीं है। अब मैं खाना बनाने का सामान खरी-दने निकलूंगी।'

'और तुम लोगों के लिए बिछावन भी तो चाहिए?' अतीश ने कहा।

'बिछावन? हमारे लिए नहीं चाहिए। खाली निवाड़ में बड़े मजे में था।'

त्रिपर्द

'मैं तो एकदम मजे में नहीं थी। सारी रात मुझे नींद ही नहीं आई।
र अतीश का जैसा अपूर्व विस्तर है, भगवान वचायें।'

'नई जगह में ऐसा होता है।'

'मजेदार विस्तर और मानसिक शांति नहीं मिलती।'

'कल किस चीज का अभाव लग रहा था ?'

'दोनों का।'

'दोनों का ही ?'

'हां, और नहीं क्या ? इस मकान को जब तक ठीक न कर लूंगी
व तक मुझे चैन नहीं मिलेगा। कल आधी रात को मैंने लिस्ट तैयार
की है।' यह वात सुरभि ने झूठ कही थी। लिस्ट उसने सवेरे तैयार की
थी।

'लिस्ट ? इतना क्या लोगी, जो लिस्ट वना रखी है ?' संदीप
चौंका।

'देखो।' कहकर सुरभि ने लिस्ट उसके सामने फेंक दी।

किन्तु संदीप पूरी लिस्ट पढ़ने का धैर्य नहीं एकत्र कर सका।
कागज उसके हाथ से गिर पड़ा। कातर भाव से वह आर्तनाद कर
उठा।

'इतना सव चाहिए तुम्हें ? वह सव खरीदोगी ? वह वाल्टी, मग,
सील, लोढ़ा, चूल्हा, हांडी, कढ़ाई, संडसी, खंती। अरे वाप रे ! वह सव
इस मकान में समायेगा ?'

'देखो अंटता है या नहीं।

'ऐसी गृहस्थी तुम करोगी ?'

'उसमें इतना सोच-विचार करने की क्या आवश्यकता है ? ये सव
एकदम जरूरी हैं। छलनी, वालपेन, कील, रस्सी···।'

'सव, सव चाहिए ? अतीश, वह कह क्या रही है ?'

'सुन तो रहा हूं। इसीलिए सोच रहा हूं···।'

'भई, मुझे इसमें मत फंसाओ। पैसा लगेगा। यह लो।' नोटों का
एक पुलिंदा संदीप ने निकालकर उन्हें दे दिया। अतीश ने रुपयों को हाथ

नहीं लगाया। थोड़ा सकुचित-सा होकर बोला—'मैं भी तो इन बातों में नहीं पड़ना चाहता था। मगर सुरभि इतनी चीजें एक साथ कैसे लाएगी। उसे असुविधा होगी, इसीलिए···।'

सुरभि ने नोटों का पुलिंदा उठाकर बैग में भरते हुए कहा—'खैर, अक्ल तो आई। चलो, चलो। इतना नखरा दिखाने की जरूरत नहीं है।'

'सुरभि, तुम शर्त तोड़ रही हो,' संदीप ने कहा, 'तुम्हारी इस घर-गृहस्थी में हमारे पड़ने की बात नहीं थी।'

'हुंह, बड़े आए जज के नाती। देखो, पग-पग पर शर्त तोड़ूंगी। बाप रे, रात-दिन अगर शर्त में ही फंसे रहना है, तो मुक्ति क्यों हुई हमारी? चलो, चलो अनीश। इस पागल की बात में पड़ें तो खाना-सोना भी बन्द हो जाएगा।'

वे दोनों निकल पड़ते हैं। संदीप स्तब्ध होकर पड़ा रह जाता है। सहसा उसका मस्तिष्क किसी और दिशा में मुड़ गया। रात भाई साहब ने खाना खाया होगा? उज्ज्वल ने अपने चाचा की कीर्ति सुनी होगी? वह क्या अपने चाचा की इस भयंकर बात को सुनकर भौंचक नहीं रह गया होगा? शायद रोया भी हो? बीच-बीच में घूमने घर की ओर आऊंगा, ऐसा कहा तो था उसने। आज का दिन ही क्या वह 'बीच-बीच' का दिन नहीं हो सकता? शायद गेट पार करने में उसे लज्जा लगेगी?' किंतु क्या उस त्रिशंकित संघ के किसी सदस्य में लज्जा जैसी किसी चीज का संधान पाया जा सकता है?

सवेरे की चढ़ती हुई धूप में कितना माधुर्य होता है? हवा में जाने कैसा तो एक रोमांच सिहरता है। नोटों का एक बंडल बैग में भरकर बाजार-हाट करने में कैसा तो एक पुलक मन में भरा रहता है, आज के पहले क्या कभी सुरभि को इसका पता भी था?

नौकरी करने के बाद कभी सुरभि बाजार करने नहीं निकली है, ऐसी बात तो नहीं है। बीच-बीच में जाती रही है, किंतु वह सौदा नितांत सीमित पैसों में करना पड़ता था। साड़ी, ब्लाउज, बैग, सैंडिल और दो-

एक अन्य प्रसाधन सामग्री, बस। और कुछ भी तो नहीं। दीवार को सुनाकर कही गई मां की दो-एक फरमाइशों को खरीदते समय सुरभि का कलेजा फट जाता था। लगता था एक-एक दस रुपये का नोट जैसे पसली की एक-एक हड्डी है। बटुआ खाली करने पर लगता था हड्डी-पसली सब निकालकर बाहर रख देना पड़ रहा है।

उसकी बड़ी बहनें छुटपन में उसे कभी-कभी उपहार देती थीं। उसने भी कई बार सोचा कि उन्हें भी कुछ उपहार देगी, हिम्मत ही नहीं हुई। चाहती तो कर सकती थी। मगर मामूली-से कारण पर कौन अपनी पसली निकालकर बाहर रखेगा?

आज के वे नोट सुरभि के लिए पसली की हड्डियां नहीं हैं। इन्हें किसी और ने एक मुट्ठी धूल की तरह उसके सामने फेंक दिया है।

आश्चर्य! कैसे ऐसा कर सका वह? अधिक रहने पर भी क्या ऐसे अनायास फेंका जा सकता है? अभी तो रायकोठी के उत्तराधिकारी के रूप में उसके पॉकेट में नोटों का पुलिंदा है; कल रहेगा या नहीं, कौन जाने? छोड़ो, आज तो दुकान-दुकान घूमकर लिस्ट-भर सामान खरीदने का सुख वह ले ले।

अपने को खुलकर दिखाने और अपने अधिकार को साबित करने की जगह दुकान ही है। एक खंती लेने के लिए सत्रह खंतियां क्यों न सुरभि निकलवाये? क्यों न कहे—'निकालिए तो महाशय और दस-पांच। क्या? और नहीं है? यही दस ठो खंती लेकर चले हैं दुकान चलाने?'

दुकानदार ने कहा था—'लोहे का लीजिए न, जितना चाहिए मिलेगा।'

'लोहे का? खूब, खरीदने आई हूं स्टेनलेस स्टील का और जनाब हमें दिखा रहे हैं, लोहा। न अतीश, इधर की दुकानें बड़ी पूअर हैं।'

अतीश दुकानदार के चेहरे की ओर नहीं देख पाता है, इसीलिए और तरफ मुंह करके कहता है—'अगर एक-एक चीज के लिए तुम्हें इतना समय लगेगा तो तुम्हारी लिस्ट का सब सामान खरीदने में तो एक महीना लग जाएगा।'

सुरभि झनक उठती है।

उस झनक में जो एक विचित्र रस है, उसे अपने सर्वांग में भोगते हुए वह बोली—'आहा, तो क्या आख बंद करके जो मिले अनाप-शनाप खरीद डालूं ?'

'आखें खोलकर खरीदने लायक बहुत-सी चीजें हैं, इस दुनिया में। मामूली चम्मच, कलछुल, खसी आख बद करके भी खरीदे जा सकते हैं।'

'खूब चलो-चलो, किसी और दुकान पर चलो।'

'देखो यह अभद्रता ।' अतीश उससे फुसफुसाकर कहता है।

'अरे वाह रे मेरे भद्रपुरुष !' सुरभि ने आखों में अपूर्व रस भरकर कहा। उसके चेहरे से अजीब मादकता झर रही थी।

थोड़ी देर बाद उसी तरह फुसफुसाते हुए अतीश ने कहा—'जानती हो तुम्हारा चेहरा देखकर मुझे कैसा लग रहा है ?'

'कैसा ?'

'मुझे लग रहा है दूध छानने वाली छलनी से बढ़कर सुन्दर वस्तु इस दुनिया में एक भी नहीं। जिस तरह उसके ऊपर हाथ फिरा रही हो और तुम्हारा चेहरा पुलकित होता जा रहा है।'

'अच्छा, रहने दो।'

'नहीं, रहने क्यों दूं ?'

'कौन जानता है बाल्टी, मग, सिल-लोढ़ा आदि में इतना काव्य, इतना छंद, इतना सौंदर्य छुपा हुआ है ? इस समय तो तुम बाकायदे कोई अनुपम रूपसी लग रही हो।'

'लग रही हूं ? थी नहीं ?'

'नहीं, सुन्दरी थी, रूपसी नहीं। रूपसी का अर्थ और ही कुछ है।'

'सुनूं, वह अर्थ क्या है ?'

'उसे समझाना बहुत मुश्किल है। मोटी बात यह है कि मुझे चिंता हो रही है।'

'अच्छा, क्यों चिंता हो रही है, यही बता दो।'

'वह तो और भी मुश्किल है।'

'तो रहने दो, मुझे भी समझने की फुरसत नहीं है। अरे यह क्या है, बहुत अच्छा है, देखने में, क्या बताया? आलू काटने की छुरी है? कितना दाम है? क्या कहा? डेढ़ रुपया? इस मामूली-सी चीज का डेढ़ रुपया कौन देगा? एक रुपया, एक रुपया नहीं होगा तो रखे रहिए। अच्छा बीस आने में होगा? नहीं होगा? आप तो बड़ा झमेला करते हैं साहब। इस मुहल्ले में नई आई हूं न? इसीलिए ठग रहे हैं क्यों? सब चीजों का दाम बढ़ा रखा है। जानते हैं कि लेंगी नहीं तो जाएंगी कहां? अच्छा, आखिरी दाम कहे दे रही हूं, मन हो दीजिए चाहे रखे रहिए। एक रुपया छः आना। कमाल करते हैं जनाब, आपकी दुकान में मोल-भाव नहीं होता है तो इसका मतलब है, आपकी दुकान में औरतों को खरीदारी करने आना ही नहीं चाहिए। मोल-भाव नहीं किया तो बाजार करने का मजा ही क्या?'

ऐसे ही सुरभि अपने को विकीर्ण करेगी। कमल की तरह शत-शत दलों में अपने नारी रूप को विकसित करेगी। अकारण ही अपने स्वर के झंकार से राह-घाट को गुंजरित करेगी। उसके पैरों के नीचे पक्की जमीन है और उसके हाथों में नोटों की एक गड्डी जो टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो रही है, इधर-उधर बिखर रही है। मगर उसका हृदय फट नहीं रहा है। ओह! कितना मजा आ रहा है?

एक बार डरते-डरते अतीश ने पूछा था—कितने थे?'

'कौन जाने?' मुंह बिचकाकर सुरभि ने कहा, गिना नहीं था। होगा यही—उंह, होगा कुछ—'

'सब खर्च कर दिया?'

'और क्या? खर्च करने ही तो निकली थी। क्या संदीप को हिसाब देना होगा?'

'धुत्, मेरा मतलब यह नहीं था। कहने का मतलब है कि शुरू से ही तुमने जिस तरह पैसा फेंकना चालू किया है, इस हिसाब से तो अंत तक ·।'

सुरभि ने हंसते हुए चेहरे पर गंभीरता का आवरण तानते हुए कहा—'यही तो असली शुरुआत है। जीवन नामक चीज को फालतू खर्च के खाते में लिखकर ही हमारा यह प्रयोग आरंभ हुआ है।'

अतीश चुप रह गया। उसे कोई जवाब ही नहीं सूझा।

किंतु क्या सुरभि सच ही वैसा सोच रही है? नहीं। यह बात तो उसने एक रहस्यमय बात कहने के लिए ही कही थी। उस समय उसके मन में एक माधुर्य की अनोखी तरग लहरा रही है, वह एक मजेदार बात सोच रही थी। सोच रही थी कि पुराने जमाने में जो पुरुष तीन-चार शादियां करते थे, उसका भी एक उज्ज्वल पक्ष था। एकदम अकारण नहीं था एक औरत अगर गृहस्थी चलाती थी, तो दूसरी उसकी भगिनी होती थी। औरतों के लिए भी वैसा इंतजाम बुरा नहीं है। एक पैसों का जुगाड़ करेगा तो दूसरा उसकी फरमाइशें पूरी करेगा, उसे अपने सिर पर बिठाकर घुमायेगा। हमेशा उसके संग लगा रहेगा। बात साफ है। जो पैसे देगा वह *समय नहीं दे सकेगा। जो समय देगा वह पैसे नहीं दे सकेगा। यही* स्वाभाविक है। क्योंकि दुनिया के दोनों पलड़ों में से एक है अर्थ और दूसरा है समय। समय के बदले में पैसा और पैसे के बदले में समय।

और अचानक सुरभि हंस पड़ी।

'क्या हुआ?' अतीश ने प्रश्न किया।

'कुछ नहीं।'

'कुछ नहीं? रास्ता चलते-चलते हंस रही हो बिना-वजह। तुम्हारे स्वभाव में कुछ परिवर्तन देख रहा हूं।'

'परिवर्तन होना ही स्वाभाविक है। जीवन में भी तो कम परिवर्तन नहीं हुआ। अनंतकाल से चले आते हुए संस्कारों का उन्मूलन। सारे *जीवन में संचित मूल्यबोधों का आमूल परिवर्तन।'*

'सच, संदीप ठीक ही कह रहा था, तुम बहुत सीरियस होती जा रही हो। त्रिशक्ति संघ का यह नियम नहीं है।'

'सभी नियमों को अस्वीकार करने की प्रतिज्ञा करके भी फिर अगर नियमों की दासता स्वीकार करनी पड़े तो आखिर हमने नया क्या *किया?'*

'मगर कोई रास्ता तो पकड़ना ही होगा?'

'नहीं, उसमें ही हमें आपत्ति है। जो हमारी इच्छा है वही हमारा मन

में जिसमें खुशी मिलती है, जो हमें अच्छा लगता है, वही है
है । किसी निर्दिष्ट नियम का अभाव ही होगा हमारा नियम । अभी
गृहस्थी जमाने की इच्छा कर रही है, कर रही हूं और अगर किसी दिन
री इच्छा करेगी कि जलते हुए चूल्हे में पानी डालकर निकल पड़ूं, तो
ी करूंगी । हो सकता है···।'

अतीश उसे बात पूरी नहीं करने देता और बीच में ही ठंडी आह भर-
कर कहता है—'बाप रे बाप, देखता हूं तुम तो हम लोगों से भी एक कोस
आगे चल रही हो ।'

'दुनिया का यही नियम है । प्रगति के पथ पर औरतें ही आगे कदम
बढ़ाती हैं ।'

'लगता है कोई नई थियरी ईजाद की है तुमने ।'

'ऊहुंक्, अच्छी तरह सोचो तो तुम्हें मेरी बात ही सही लगेगी । पुरुष
की उछल-कूद से समाज एक कदम भी आगे नहीं बढ़ता । बस, उछल-कूद
ही हाथ रहती है । मगर जब औरतें जागती हैं और देह झाड़कर उठ पड़ती
हैं तो सारा समाज धड़धड़ाकर आगे बढ़ जाता है ।'

'हूं, देखता हूं तुम बहुत सोचती हो ।'

'पहले नहीं सोचती थी । हमें सोचने का एकदम अभ्यास ही नहीं
था । मगर सोचना तो तुम्हीं लोगों ने सिखाया है ।'

'और देखता हूं, गुरु-गुड़ ही रह गये, चेला शक्कर हो गया ।' अती
ने हंसकर कहा ।

सुरभि भी हंसी, फिर बोली—'गुरु को हराया नहीं तो बा
क्या ? गुरु का केवल अनुशरण किया जाय तो कोई विद्या ही आ
बढ़ती । तब तो आज भी आदमी यही जानता कि सूरज पृथ्वी की प
कर रहा है ।'

'तुलना बड़ी पुरानी दी तुमने ।'

'तुलना पुरानी हो या नई उससे क्या होता है ? एक बात
सो कह दी । मगर एक बात इस समय समझ रही हूं ।'

'वह क्या ?'

'इतना सामान खरीद लिया है हमने कि एक रिक्शे में तो जाने से रहा।'

'अच्छा, यह बात अब समझ में आई है।'

'नहीं, सोचा था सब सामान पैर के पास रखकर…।'

'हां, रास्ते में तमाशा बनने का अच्छा तरीका है।'

'यही तो मजा है। तमाशा होना तो मजेदार चीज है। जानते नहीं हो तमाशा बनने के लिए ही तो लोग जाने क्या-क्या करते घूमते हैं।'

'तो फिर हर्ज ही क्या है ? एक रिक्शा बुलाऊं ?'

'नहीं एक रिक्शे में तो सब जायेगा नहीं। टैक्सी होती तो काम चलता। मगर देखती हूं, यहां टैक्सी पाना बहुत कठिन है।'

'लगता तो ऐसा ही है।'

'*एकदम बेकार जगह है।*'

'ऐसा लगता तो नहीं। इसी बेकार जगह में आकर तो देख रहा हूं मानों सुर बज रहे हैं।'

'कर क्या रहे हैं वे लोग ?' सदीप अब कुछ परेशान होने लगा है। इतनी देर बाजार में किया भी क्या जा सकता है, आखिर ? जमा-जमा साठ तो रुपया था, जो हमने उनको दिया था। कुछ उन दोनों के पास रहा हो और बात है। हो भी तो कुल मिलाकर सौ से ज्यादा किसी हालत में नहीं होगा, और सुरभि की कंजूसी का तो पता है। कॉफी हाउस में घुसने के पहले सात बार पैसे गिनती है। सब दिन तो 'अनन्त काफे' की चाय पर ही गोष्ठी जमती रही है। तो फिर इतनी देर से खरीद क्या रही है वह ? क्या खरीद ही सकती है ? एक मामूली गृहस्थी के लिए कितनी चीजों की जरूरत पड़ती है ? यही बिस्तर के लिए गद्दा-तकिया तो नहीं बनवाने लगे ? कितनी दूर गये होंगे ? ओह ! एक्सिडेंट भी तो हो सकता है ? या कहीं सुरभि का मन तो नहीं फिर गया ?

और वह घर लौट गई। अतीश उसे लौटा न पाया हो…
तरह की अनंत चिंताओं में सदीप डूब गया। फिर उसने अपनी चि

स्वच्छंद बहने के लिए छोड़ दिया और उसका मन सहसा किसी पार
मकान के कमरों में, दालान में सीढ़ियों पर, उनके नीचे, हर कहीं
कने लगा।

संदीप की इस निष्ठुरता की वहां क्या प्रतिक्रिया हुई होगी?

संदीप क्या आज अपनी छोटदी के घर जाये? क्या वह उसे बता आये, कि वह सामाजिक जीवन-यापन का एक नया एक्सपेरिमेंट कर रहा है? मगर इतनी सफाई भी देने की क्या जरूरत है? अपने को संदीप अपराधी के कटघरे में खड़ा ही क्यों करे? अपने जीवन के सम्बंध में मनुष्य को स्वाधीनता मिलनी चाहिए, क्या यह सभ्य समाज का नियम नहीं है? तब मन में यह जो बन्दी है, वह क्या है, कौन है? उसकी हड्डियों में, उसकी शिरा-उपशिरा में यह टीस किस बात की है?

संस्कारों की?

नहीं, प्यार की?

नहीं, नहीं, केवल उदासी की?

और उसी क्षण संदीप की छोटदी प्रनति चौधरी टेलफोन पर अपनी भावज को संदीप के ही सम्बंध में अपना मत दे रही थी—'मन? अरे उ
अभागे के पास मन नाम की कोई चीज है भी? अपना पता तक तो व
नहीं गया। अच्छा, मैं तुम्हारे छोटे ननदोई को कल ही उसके आ
भेजती हूं। जाकर उस अभागे पाजी को कान खींचकर लायेंगे। क्या क
हो? गाली नहीं दूंगी उस कलमुंहे को तो क्या पूजा करूंगी? ना
तुम्हारे समान सभ्य तो मैं होने से रही। गुस्सा लगेगा तो गाली दूंगी
अवश्य दूंगी। गुस्सा होने पर तो मैं भगवान को भी गाली देती हूं
गुस्से में सभ्यता?' इसी भाषा में बहुत देर तक प्रनति ने अपन
उतारा और अंत में कहा—'अच्छा तो फिर रखती हूं।'

'रखती हूं' माने अब बड़ीदी को अपने मन की ज्वाला सुनाने
है। अवश्य उनसे बात करने का टोन कुछ भिन्न होगा, क्योंकि
बड़े दामाद का अनुमान है कि छोटी का यह विग्रही भाव
मतलब रखता है। छोटी के घर में शायद स्नेह का वाता

अन्यथा ''।

इसीलिए बड़ीदी के साथ उसका सुर नहीं मिलता। सुर में सुर मिलना ही तो असल चीज है, नहीं तो सारी वार्ता बेसुरी हो जाती है।

दो-दो रिक्शों पर आगे-पीछे, सीट पर, सीट के नीचे, गोद में और पैरों के पास तक सामान से लदी-फदी सुरभि बड़े प्रसन्न मन से घर की ओर जाते-जाते बोली—'जो भी कहो परन्तु संदीप की यह योजना है बड़ी अयथार्थपूर्ण। बोलो तो, इन चीजों में से कौन-सी ऐसी है जिसकी जरूरत न हो?'

अतीश के अनुसार उनमें से कई चीजों के बिना भी काम चल सकता था, परन्तु वह बात उसने न कहकर, कहा—'यह बात तो ठीक है।' फिर भी उसका मुंह देखकर तो नहीं लगता था कि वही कुछ देर पूर्व 'तमाशा' बनने के आतंक में सिहर उठा था।

'फिर भी एक बाल्टी खरीदना रह ही गया।' सुरभि ने कहा।

'और बाल्टी चाहिए?'

'जरूर। बाथरूम और रसोईघर के लिए तो अलग-अलग चाहिए ही। उसके अलावा नल से पानी लाने के लिए'''।'

'अतीश' बरामदे में बेंत की कुर्सी पर बैठा संदीप प्रायः बेहोश ही गया। अतीश और सुरभि दोनों चौंक उठे। संदीप कराह उठा—'क्या इस मुहल्ले में कोई डाक्टर नहीं है?'

'डाक्टर?' अतीश भौचक्का हो जाता है।

'हां—हां, डाक्टर। कहीं से एक डाक्टर अभी ढूंढकर लाओ। लगता है मेरा हार्टफेल हो रहा है।'

और संदीप कलेजा पकड़कर जमीन पर बैठ गया।

'सुरभि, सुरभि, जल्दी आओ। अचानक संदीप को जाने क्या हो गया?' अतीश कातर होकर रूमाल से ही संदीप को हवा करने लगा। सुरभि दालान में उतारे गए गन्धमादन पर्वत को लिस्ट से मिला-मिलाकर गिन रही थी, वैसे ही बैठे-बैठे बोली—'अरे, क्यों बेवकूफी कर रहे हो? मैं उसके हार्टफेल का कारण जानती हूं। अच्छा''' —

ामने से हटाये दे रही हूं।'

तेरे की ! उसी के लिए क्या ?' अतीश ने कहा।

नहीं तो क्या ? संदीप, डरो मत। सब ऐसे फैलाकर नहीं अभी सजाए देती हूं।' और हंसकर सुरभि ने संदीप को उठाकर र बैठा दिया।

स तरह त्रिशक्ति-संघ का उद्घाटन दिवस बीता।

कंतु सुरभि की प्रसन्नता का ओर-छोर नहीं था। देर भले हो गई फिर भी बड़े उत्साह से वह खाना बनाने चली। फिर वह परोसने। अतीश ने टोका—'अब यह परोसने का झमेला लगाने की क्या रत है ? तो कुछ बना है, सब एक साथ लेकर हम लोग खाने बैठ यें।'

सुरभि ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—'पागल हुए हो।'

शाम को संदीप ने प्रस्ताव रखा—'अब निकला जाए किसी ओर।'

सुरभि ने फिर झनककर कहा था—'आज तो अब और कहीं जाना नहीं हो सकता।'

'कहीं जाना नहीं हो सकता ?'

'एकदम नहीं। तुम लोग चाहो तो जा सकते हो। मुझे बहुत-सा काम करना है।'

'वह सब आज रहने दो।'

'पागल हो क्या ?'

उनके सभी प्रस्तावों को पागलपन कहकर सुरभि ने उड़ा दिया था। वह उस दिन घर से नहीं निकली। संदीप अकेला ही रहा। अतीश भी नहीं गया। उसने शंका प्रकट की थी—'एकदम नये मुहल्ले में इस तरह सुरभि को अकेली छोड़ना...' बात एकदम हंसी में भी उड़ा दे लायक नहीं थी। इसलिए संदीप अकेला ही चल पड़ा। हाजारा के मो पर आकर बस से उतर पड़ा। सोचा था, उतरते ही घर की ओर च पड़ेगा। मगर उसे क्या मालूम था कि बस से उतरते ही उसके पैर प के हो जायेंगे। लग रहा था कि वह किसी प्रकार रायकोठी से आंख मिला सकेगा। जैसे उसके सामने एक पत्थर की अलक्ष्य दीवार उठ

हुई है। उसे लाघना संदीप के वश की बात नहीं है। आज तक यह बाधा कहा थी? दो दिन पहले तक तो संदीप रात साढ़े ग्यारह बजे भी बिना किसी दुविधा के लोहे के बड़े फाटक को ठेलकर, सीढ़िया चढ़ता हुआ, दुतल्ले पर अनायास ही चढ जाता था।

किंतु एक दिन मे ही यह क्या हो गया? कहा से आ खड़ी हुई यह दुर्लंघ्य दीवार? यह तो संदीप की अपनी दुर्बलता है।

क्या संदीप इतना दुर्बल है? छि-छि.! किंतु वह धिक्कार जैसे उसके अन्दर से नहीं निकलना चाहती थी। एक विचित्र अनुभूतिहीनता उसे निकाले ले रही थी। अचानक उसे याद आया, वह बेवकूफ की तरह एक ऐसी जगह खड़ा है, जहा से न केवल अपना घर देख पा रहा है बल्कि आस-पास के घरों की खिड़कियों से लोग उसे भी देख रहे है।

उफ्! एक दिन मे ही संदीप अपने मुहल्ले के लिए दर्शनीय हो उठा है? मुहल्ले में सभी लोग शायद जानते है कि वह अब यहा नहीं रहता। क्या सचमुच उसका इस मुहल्ले से कोई संबध नहीं है?

ठीक ही तो सोचते है लोग। संदीप तो सचमुच राय परिवार का कोई नहीं था। बचपन से ही तो वह यही भूमिका निभाता रहा है। तो आज जब कि अपनी अभीप्सित वस्तु पा ली है तो एकाएक उसे लज्जा क्यों हो रही है? नहीं, यह केवल लज्जा नहीं है। एक भयानक यत्रणा उसको मथने लगी है। किस जगह वह यत्रणा हो रही है, वह ठीक समझ नहीं पा रहा है, फिर भी·· फिर भी ··।

और वह पैदल ही चलने लगा है। लैसडाउन पार कर कब, वह पद्मपुकुर के पास आ गया उसे यह भी ख्याल न रहा। होश आया तब, जब उसने छोटी भानजी मीलू का हर्ष-विह्वल कंठ सुना।

'छोटे मामा! ओ छोटे मामा।'

मीलू दुतल्ले के बरामदे में से पुकार रही थी। इसका मतलब तो यह हुआ कि वह अनजाने ही बड़ीदी के घर की ओर आ निकला था।

ऐसा हुआ कैसे? क्या आश्रयहीन मन अज्ञात भाव से किसी आश्रय की तलाश में उसे यहा ले आया है? अथवा अभ्यासवश ही ऐसा हुआ

त् मैं पागल हो गया हूं। संदीप ने झटककर अपने को विचार
न मे छुड़ा लिया।

वड़ीदी ने विगलित होकर कहा—'संदीप, तू मेरे यहां आकर रह।'

संदीप हंस पड़ा। वोला—'तो फिर हाजरा वाली कोठी ने ही क्या
नी की है?

वडीदी ने उसी तरल कंठ से कहा—'गलती न होती तो तू इस तरह
व कुछ छोड़कर क्यों चला जाता? हमारे पास मीलू-नूतू की तरह ही
हेगा तू।'

छोटदी से वड़ीदी केवल दो-चार वरस की ही वड़ी होंगी। मगर
उनकी वातें ऐसी ही वड़ी-वड़ी होती हैं, जैसे कोई पुरखिन हों। संदीप ने
सोचा—नहीं, यहां ज्यादा आना-जाना ठीक नहीं होगा। इस तरह की
भावुकता को प्रश्रय देना खतरनाक हो जायेगा। ऊपर से हंसकर वोला

'सोचता हूं, अगर अचानक मेरा पोस्ट घटकर मीलू-वूतू के वरावर हो
जाय, तो मैं अपने को मुनाफे में समझूं या घाटे में।'

'देख, मैं तुझसे वड़ी हूं, कोई छोटी नहीं हूं। तू चाहे जितना छिपाये
पर असल वात समझने में मुझे देर नहीं लगती है। अगर घर पर तुझे
आराम मिलता तो तू इस तरह वेहाल क्यों वनता? क्या करूं, तुम लोगों
ने तो परायी समझ लिया। भूले से इधर आ निकला तो अपने दिल की
वात कहने का मौका पा गई।'

संदीप ने मुंह का भाव करुण वना कहा—'आहा वड़ीदी, अगर ह
घर में तुम्हारी तरह एक स्नेह-प्रतिमा होती, तो इस देश का क्या कह
था? एकदम स्वर्ग हो जाता।'

'तू मेरा मजाक उड़ा रहा है?' आंखें टेढ़ी करके वड़ीदी ने पूछा

मुझे बड़ी चिन्ता होती है।'

बड़ीदी ने और भी भारी मुंह करके कहा—'मेहरबानी करके कुछ खा ले।'

'हां, अभी तो असल बात पर आईं तुम।'

बड़ीदी ने एक प्लेट खाने का सामान उसके सामने रखकर कहा—'कुछ खा लेगा तो भी अपने को कृतार्थ मानूंगी। अच्छा, बता, कहां ठहरा है?'

'यही थोड़ी दूर पर है।'

'शायद किसी मित्र के यहां पेइंग गेस्ट है, क्यों?' बड़ीदी के चेहरे पर उत्सुकता नहीं, एक संकल्प है, जैसे सारी बात जाने बिना छोड़ने वाली नहीं है। संदीप हंस पड़ा। बोला—'बड़ीदी देखता हूं तुमने तो दिव्य दृष्टि से सब कुछ पहले ही जान लिया है।'

'दुनिया देखते-देखते आपने-आप दिव्य दृष्टि आ जाती है। तो तुम्हारे मित्र की बहू है न?'

'हाय भगवान! बहू होती तो फिर चिन्ता ही क्या थी?'

'तो, वह भी तुम्हारी ही तरह छड़ा-छड़गा है?'

'वह नहीं, वे।' अपनी हंसी को किसी तरह रोककर कहता है संदीप।

'मैया रे, कितने सब फालतू एक साथ जुट गए हैं?'

'ज्यादा नहीं है। बस दो, एक लड़का और एक लड़की।'

'एक ल ''ल'' लड़की?' लगा मानो बड़ीदी का दम निकल जायेगा। 'इसका मतलब?'

'लड़की माने लड़की। साड़ी पहनती है। बालों का बड़ा-सा जूड़ा है उसका।'

'कुंवारी है?'

'और नहीं तो क्या, हम जैसे फालतू आदमियों के पास कोई अपनी बहू छोड़ जाएगा?'

बड़ीदी का चेहरा जैसे भयकर लाल हो उठा—'किस चूल्हे की लड़की

ह ?'

'होगी ही किसी चूल्हे की ।'

'इसका मतलब हुआ तू बरबादी के रास्ते पर जा रहा है। सब समझ
ई । कुछ भी बाकी नहीं है।'

'समझ गई न ? चलो जान बची ।'

'तुम्हारा पता क्या है ?'

'हुआ गजब, तुम जिस तरह चेहरा लाल कर रही हो, उस हिसाब
से तो पता मालूम हो जाय तुम्हें, तो हमारे उस अड्डे में हुआ प्रलय ।'

'मैं कौन होती हूं प्रलय करने वाली ? सोच रही हूं कि बाप के मुंह में
अगर कालिख लगेगी तो अपने मुंह में भी लगेगी । और क्या ?'

वंश । वंशमर्यादा । बड़ा पुराना सौदागर है यह । अनन्तकाल से
आदमी अपने नाम इसके खाते में लिखे हिसाब को चुकता करता आ रहा
है । फिर भी वह कर्ज चुक नहीं रहा है । रास्ते में लौटते समय संदीप यही
सब सोचता आ रहा है। इस झूठे कर्ज को अस्वीकार करते ही, आदमी
समाज से खारिज । यह अच्छी बेबसी है ।

सचमुच क्या कभी ऐसा नहीं हो सकेगा कि आदमी केवल अपने निज
के परिचय से जाना जाएगा ? वंश, गोत्र, पदवी, परिवार आदि सैकड़
बधनों में बंधा हुआ आदमी नहीं, जो एकदम बनावटी और नकली है
अपने जीवन को अपनी इच्छा के अनुसार बिताने की स्वाधीनता उसे क
नहीं है ? अपने सभी सुख-दुःख और अपने अच्छे-बुरे का उत्तरदा
आदि उसी मनुष्य नामक प्राणी पर रहे तो क्या वह थोड़ा-सा और जि
दार, थोड़ा-सा और बुद्धिमान नहीं होगा ?

सदीप के ही विचारों को जैसे प्रतिध्वनित करती है सुरभि ।
—'थोड़ी-सी और जिम्मेदारी फील करते, थोड़ी-सी और बुद्धि
तुम्हारे अन्दर तो क्या हर्ज था ? नई जगह, रात के नौ बजे ही
सूना हो जाता है और तुम ग्यारह बजे घूमकर आ रहे हो ।'

संदीप जैसे जबर्दस्ती की हंसी हंसता हुआ बोला—'अके
क्या ? अबला महिला तो अकेली थी नहीं, था तो पहरेदार ।'

'उमसे क्या होता है ? इसका मतलब तो यह नहीं कि तुम अकेले इधर-उधर भटकते फिरो।'

'किया भी क्या जाए ? तुम लोग तो निकलने को राजी नहीं हुए।'

'घर-गृहस्थी में जब चाहे तभी क्या निकला जा सकता है ? घर में इतना सामान फैलाकर क्या घूमने की बात सोची जा सकती है ?'

'गृहस्थी ?' सदीप सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। 'अतीश।'

'तुम भी कमाल करते हो, सदीप। अरे ! गृहस्थी माने घर, जहां दो आदमी रहें। और क्या ? ज्यादा शरारत करोगे तो अभी सुरभि नाराज हो जाएगी।'

'नाराज हो जाएगी ?'

'और नहीं तो क्या ?' अतीश माथे पर बल डालते हुए बोला—'इसके अलावा···मेरा मतलब है, हमेशा तीनों आदमी साथ-साथ रहें यही अच्छा होगा। उससे मनोबल बना रहता है। इतनी रात तक एक लड़की के साथ अकेले बैठे रहना···मतलब ··मेरी बात तो समझ ही गए होगे ?'

'इसका मतलब ?' सदीप पल-भर एकटक अतीश की ओर तिरछी निगाह से देखता रहा।

'आज तक तो कभी तुम्हारे मुह से नहीं सुना था कि सुरभि एक लड़की है।'

सदीप सच कह रहा था। कई बार बहुत रात गए तक उनमें से एक सुरभि के साथ किसी पार्क की बेंच पर बैठा गप्प लड़ाता रहता था। कभी सदीप नहीं आ सका, तो कभी अतीश ही को फुरसत नहीं मिली, मगर आज तक कभी भी तो उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि सुरभि एक लड़की है।

मगर सुरभि को कैसा लगता था ? क्या उसे भी भूल जाता था कि वह एक लड़की है ?

नहीं, उसे कभी यह बात नहीं भूली। केवल वह मित्रों के सामने और अपने सामने भी उस एहसास को भूले रहने का दिखावा करती

हमारी दोस्त हो !' वे कहते, तो कैसे वह अपने से मुंह खोल-
ी कि वह दोस्त नहीं, एक लड़की है। सिर्फ एक लड़की। नहीं,
नहीं कह सकी थी कभी। यहां तक कि उसने कभी अपने सामने
वात को नहीं स्वीकार किया था। असाधारण वनने के उन्माद
ने अपने अन्दर की नारी को अपने अन्दर ही किसी कालकोठरी में
ी वना रखा था।

किंतु इस नये परिवेश में उसके अन्दर जैसे एक अद्भुत परिवर्तन हो
ा था। दो पुरुषों के बीच एक तीसरा पुरुष वनने की उसकी एकदम
च्छा नहीं कर रही थी। वह पुरुष नहीं, पुरुष की प्रिया होना चाहती
थी। किसी घर वाले की घरनी होना चाहती थी और वह इच्छा एक-एक
पल बढ़ती ही जा रही है। सारी वड़ी-वड़ी वातें जैसे किसी कुहासे
मे गुम होती जा रही हैं। भीतर का क्षुधार्त, संसारी मन जैसे पैरों के
नीचे एक नई माटी पाकर परवान चढ़ रहा है।

क्या सुरभि के उस मन को वे रोक सकेंगे ? उनका 'त्रिशक्ति संघ'
क्या उसकी आत्मा की वह पुकार रुद्ध कर सकेगा ? शायद नहीं।

सुरभि ने खाना वना लिया है। आकर तेज गले से वोली है—'अच्छा
अव उठकर खाना खा लो तुम लोग। वेकार गप्पवाजी में टाइम मत
खराव करो। खा-पीकर हमें छुट्टी दो। वहुत-सा काम अभी वाकी है।'
अपने किसी काम से वाहर जाते समय वह दोनों पुरुषों को अवोध
वालकों की तरह डांट पिला रही है—'देखो भूल मत जाना।' वाज़ा
मे लौटकर वड़वड़ा रही है—'वाप रे! वाजार कैसा आग हो रहा है'
और गृहस्थी का संयोजन करती सुरभि की आवाज में जैसे एक दृढ़ संक
वज उठता है, उसकी आंखों में किसी नागपाश की छाया है और उ
आंखों की वह चमक रह-रहकर कौंध उठती है।

क्या उनकी कल्पना का निरुद्देश्य, स्वच्छंद जीवन यही है?
यही उस अद्भुत प्रयोग का नक्शा है? नमक के डिव्वे का चम्म
साफ-सुथरा झलक रहा है।

क्या इसी के लिए प्रदीपराय का गभीर स्वर बजा था—'उसे जाने दो।' एक पगले बाउल का एकतारा जैसे गूगा हो गया है। एक टूटा हुआ तार जैसे रह-रहकर व्यग्य-में मुस्करा पडता है। वह कभी समाप्त न होने वाली बातें, खुला आकाश, गगा का किनारा, आधी-आधी रात का सिनेमा देखना सब जैसे कहीं खो गया है।

सुरभि को समय नही है।

रात मे घर छोडने से कोई ताला तोडकर सब कुछ ले जाएगा, इसी आशका से वह शाम को जाने के बाद घर से हिलना भी नहीं पसद करती। और सदीप देखता है अतीश भी उसमें सुरभि का ही साथ देता है। वह भी घर मे बाहर नही जाना चाहता। सदीप को लगता है, जैसे वे दोनों समगोत्र है। सदीप के साथ उनका मेल नही बैठता। वे दोनों जैसे अपने मन को सदा के लिए पीछे छोडकर नहीं आ सके हैं। यह सच है। वे दोनों 'हाक्स कार्नर' मे घूमकर खिडकियों के लिए सस्ता मार्का पर्दा खरीदते हैं या कोई रगीन बेड-कवर, कोई टूटी-सी फूलदानी, कोई बेढगा शीशे का सेट या वार्निश लगा चीड का सस्ता फर्नीचर। और वही सब सदीप को दिखा-दिखाकर सुरभि बडी गौरवान्वित अनुभव करती। चेहरे पर आत्मश्लाघा का भाव लगाकर वह कहती—'यह टी-सेट कुछ नहीं तो तीस-बत्तीस का तो होगा ही। जरा-सी हैंडिल चिटकी हुई है। उससे नुकसान ही क्या है। इतनी अच्छी चीज सिर्फ सत्रह रुपये मे ले आई हू। तुम लोग सात जन्म मे ऐसी चीज नही ला सकते थे।'

संदीप हसकर कहता—'यह बात तो तुम ठीक ही कह रही हो। बडी देख-भाल कर एक चिटका हुआ सेट खरीद रहा हू, इस बात का ध्यान आते ही मेरा तो मन मर जाता।'

सुरभि रहस्यमय ढंग से मुसकराती है—'क्यों नहीं, क्यों नही। जनाब मुह से चाहे जितने प्रगतिशील बन लीजिये, मगर असल में बड़ा आदमीपन जा नही सकता। अच्छी-खासी चीज जरा-सी चिटक गई तो बेकार हो गई, क्यों? भाई, मैं इतना नखरा नही कर सकती। किसी तरह काम चलना चाहिए।' अतीश बाबू भी नाक-भों सिकोड़ रहे थे—'सुरभि, यह बर्तन

नहीं और इसका रंग भी नहीं रहेगा। भले न रहे रंग,
ये। अगर बीस रुपये में एक अच्छा-सा सेट मैं एक-दो साल भी चला
तो मेरा पैसा वसूल। एक सेट खरीदकर बीस साल तक एक ही सेट
ाय पीने से तो अच्छा है कम पैसों में उसी अवधि में तीन सेट खरीदे
ं।

संदीप अवाक् होकर उसकी बात सुनता है। वह सुरभि जो घंटों गण-
त्र और आर्थिक समानता पर बहस करती थी, समाज को धिक्कार देती
थी, पूंजीपतियों को गाली निकालती थी, दो-दो पुरुषों के बीच बैठकर
समान भाव से उनसे तर्क-वितर्क करती थी, वह क्या पार्क की बेंच पर ही
छूट गई? जादू के बल से सुरभि का रूप धर कर क्या यह कोई और
मायाविनी है, जो संदीप को भा गई है?

अचानक उसे लगता है, अतीश ठीक ही कहता है। इसके साथ अकेले
ज्यादा देर नहीं बैठा जा सकता। जाने कैसी होती जा रही है सुरभि आज-
कल। इसीलिए संदीप किसी प्रकार अपने को एकांत-प्रिय बना रहा है।
किंतु जिस वस्तु के सहारे आदमी अपने अकेलेपन को भी भूल जाया करता
है, उसी वस्तु का अभाव संदीप को खल रहा है। लयब्रेरी से पुस्तकें
लाकर क्या आदमी का जी भरता है? प्रतापराय की पुस्तकों के साथ
प्रदीपराय और संदीपराय द्वारा लाई गई पुस्तकें मिलकर एक अच्छी-
खासी लायब्रेरी बन गई थी। वही जैसे अपनी हजार-हजार बांहें बढ़ाक
उसे बुला रही है, मन का 'कैसा-कैसा करना' क्या चीज है, यह संदी
अब अनुभव कर पा रहा था।

अपने को बंधनमुक्त समझने का सुख जैसे धीरे-धीरे समाप्त ह
जा रहा है। आदमी का नहीं, वस्तुओं का मोह भी इतना प्रबल हो स
है, अब संदीप की समझ में आ रहा था।

रात में ढेर सारी किताबें पास में रखकर सोने की आदत है
की। उसका अभाव जैसे उसकी नींद ही चुरा ले गया है। वह रात
देर तक जागकर टहलता रहता है।

संदीप ही नहीं तीनों में से किसी को नींद नहीं आ रही थ

में। सब कुछ पाकर भी, सुरभि जाने और क्या पाने के लिए छटपटाती रहती है। मन ही मन वह उन दोनों को ही अभिशाप देती है। अपने को भी कम धिक्कार नहीं देती है। कैसे वह अपने नारीत्व का अपमान करने वाली इस योजना के लिए राजी हुई? जी चाहता है धक्का मारकर उन दोनों के दरवाजे तोड़कर कहे—'क्यों, तुम लोगों के उस 'प्रयोजन' का क्या हुआ? तुम लोगों ने मुझे क्या खाना बनाने के लिए नौकरानी रख छोड़ा है?'

वह उनकी दोस्त है यह बात तो वह कब की भूल गई है। वह सोचती है, अगर कोई आकर पूछे, ये लोग तुम्हारे कौन हैं, तो क्या उत्तर देगी वह? क्या कहेगी कि हम लोग भाई-बहन हैं? सुनकर क्या पूछने वाला हुग नहीं पड़ेगा? शायद कहेगा कि तुम लोग भाई-बहन हो तो तुम्हारी पदवी अलग-अलग क्यों है? अगर वह कहे कि उनमें से एक मेरे पति हैं और दूसरे उनके मित्र। इस पर शायद वह कहे कि इन दोनों में से कौन क्या है। देखने से तो कुछ पता नहीं चल रहा है। छि:-छि, कितनी शर्म की बात है? क्या वह समाज को नहीं जानती है? ओह! इन पागलों की बात में आकर उसने अपना कितना नुकसान किया?

असामाजिक जीवन का मूल्य क्या है? सुरभि अगर पैसा-पैसा जोड़कर घर सजाये तो उसे कौन देखने आयेगा? अगर गहना बनवाये तो उसे पहनकर किसे दिखायेगी? छोटीदी, बड़ीदी और मंझलीदी को ही अगर कुछ नहीं दिखा सकी तो किसी बात का लाभ ही क्या?

अपना घर, अपनी गृहस्थी नहीं जिसकी, उसका जीवन ही क्या? यहां, इन लापरवाह सनकियों के बीच वह किसी भले आदमी को कैसे बुलायेगी। सुरभि के जीवन की सभी उम्मीदें खत्म हो गईं और उसके बदले में उसने पाया क्या? अपनी कमाई के पैसे खर्च करके खाना-कपड़ा पा रही है। वह तो अपने घर भी वह पाती थी। नया क्या हुआ? ये सब धूर्त हैं। सुरभि को उन्होंने फंसा दिया है।

शीशे में अपना मुंह देखती है सुरभि। उसे अपना मुंह बाघिनी की तरह लगता है। सोचती है—कैसे ये दोनों ऐसे निश्चित हैं

सचमुच ही वे निश्चिंत होकर सोते हैं, जैसा सुरभि सोचती है? नहीं संदीप तो नहीं ही सोता है, अतीश भी नहीं। आखिर वह भी तो आदमी है, हाड़-मांस का बना हुआ आदमी। जीवन की बहुत-सी सुंदर वस्तुओं से वंचित रहा है वह। बातों-बातों में उसने भी सोचा था कि वह कल्पना के संसार का एक आकाशचारी व्यक्तित्व है। सोचा था धरती से उसका कोई भी संबंध नहीं है। रक्त की पुकार को वह अनसुनी कर सकता है। सोचा था सुरभि और संदीप दोनों को दिखा देगा कितना सभ्य और संयत है वह? किन्तु अब जैसे उसके अन्तर में कोई क्रुद्ध आक्रोश रह-रहकर गरज उठता है। उसे लगता है जैसे किसी ने उसे ठग लिया है। वह कौन है? संदीप? हां, संदीप। वही।

संदीप यदि महानता की यह दीवार अपने चारों ओर न खींचे रहता, यदि वह आकाश से नीचे उतरकर मिट्टी में खड़ा होता तो उससे कहा जा सकता था—'भाई, ऐसे तो नहीं चलेगी। इसकी कोई व्यवस्था करो।'

किंतु संदीप आकाश ही में उड़ता फिरेगा। वह जमीन पर नहीं उतरेगा। वह ऊंचे बैठकर उनकी नकेल थामे रहना चाहता है। मैं क्यों उससे डरूं, क्यों शर्म करूं, हम लोगों के नियम में तो लज्जा नामक वस्तु का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

अपने कमरे का दरवाजा खोलकर अतीश बाहर निकला।

जाकर संदीप के दरवाजे के सामने खड़ा हुआ। फिर जंगले से झांककर देखा।

संदीप चुपचाप अंधेरे में ध्यानस्थ योगी की तरह बैठा हुआ था। अतीश को लगा संदीप उससे बहुत ऊंचाई पर है। उससे ऐसी छोटी बात नहीं कही जा सकती। यह बात कहकर वह उसकी निगाह में कितना छोटा हो जाएगा?

छोटा हो जाने का भय ही जैसे गिरते हुए मकान को रोक रखने वाले खम्भे की तरह आदमी को नीचे उतरने से रोक रखता है। महानता, उदारता, दया, क्षमा, ममता, प्रेम ये सब भीतर के किसी रहस्य कमरे

में रहते हैं। है भी या नहीं यह भी कहना मुश्किल है। मनुष्य को गिरने से बचाने वाला भय ही है।

सुरभि जो विद्रोह करते-करते रह जाती है, अपने को व्यस्त करते-करते रह जाती है, उसका भी यही कारण है। इन दोनों के सामने छोटी नहीं होना चाहती वह।

इसके अतिरिक्त और भी एक कारण है।

वह कारण सुरभि को पागल किए दे रहा है। अगर किसी दिन विद्रोह आवश्यक ही हो जाय तो वह इनमें से किसके पास जाएगी? जो व्यक्ति रुपया तुड़ाने के लिए देने पर रेजगारी देना भूल जाता है और महीने का पैसा बिना मांगे पाकेट से नहीं निकालता, उसके पास अथवा उसके पास, जो रुपये का नाम सुनते ही अपनी जेब का पैसा निकाल फेंकता है और हिसाब की बात सुनते ही अपने दोनों कान बन्द कर लेता है, उसके?

नहीं, पैसा ही एकमात्र कारण नहीं है। यह तो केवल उसका उपलक्ष्य है। उनके स्वभाव की पहचान कराता है। सदीप आकाश का है और अतीश मिट्टी का। सदीप जब अकेला बैठा होता है, उसके पास जाते मन आतंकित हो उठता है। लगता है, वह बहुत दूर है बहुत ऊंचे। उसकी समता में उस क्षण सुरभि अपने को और अतीश को अत्यन्त छोटा पाती है। तब उसको लगता है कि यदि आत्मसम्मान खोना ही हो तो दुर्लभ के ही लिए खोया जाए, कानी कौड़ी के लिए क्यों खोया जाए।

फिर जब अतीश के पास आती है तो उसे लगता है कि सदीप अयथार्थ, अद्भुत और सनकी है। उस पर निर्भर करके गृहस्थी नहीं बसाई जा सकती। उसके लिए अतीश जैसा एक साधारण अच्छे-बुरे का मिश्र व्यक्तित्व ही चाहिए। निखालिस सोना मूल्यवान होता है, मगर उससे गहना नहीं बनता। उसके लिए तांबा मिलाकर सोने को मजबूत करना पड़ता है। तब वह काम का होता है। विधाता ने जिन व्यक्तियों में तांबा मिला रखा है, अतीश उन्हीं में से एक है। इसलिए वही ठीक है।

फिर भी मन जैसे स्थिर नहीं होता है उसका। संदीप की ओर देखते
फर उसमें दुविधा जाग उठती है। कई वार निद्राविहीन रातों में
भि के भीतर की भूखी नागिन फन फैलाकर फुफकार उठती है। किसी
र को नहीं डस पाती, तो उसे ही चवा लेना चाहती है। वह कमरे में
ह नहीं पाती है और बाहर निकल पड़ती है। देखती है संदीप अपने कमरे
वरामदे में आराम कुर्सी डालकर वैठा है। जाने क्या आकाश की ओर
कटक ताक रहा है।

सुरभि चौंक पड़ती है। किसी दिन चुपचाप लौट जाती है और
किसी दिन उसके पास जाकर कहती है—'यह क्या, अभी सोये नहीं
तुम ?'

संदीप हंसता है—'तुम भी तो शायद सो नहीं रही हो।'

'मैं तो— माने गरमी लग रही थी। इसी ने नींद नहीं लग रही
थी।'

'मुझे भी तो गरमी लग सकती है ?'

'हां, मगर देख रही हूं, तुमने तो जैसे रात-भर वैठे ही रहने की सोची
है। क्या सोचते रहते हो इतना, आसमान की ओर मुंह उठाये ?'

'सोच तो कुछ भी नहीं रहा हूं। सुन रहा हूं।'

'क्या सुन रहे हो ?'

'अनीश के खर्राटे।' और वह हो-हो करके हंस पड़ता है।

सुरभि के अन्दर की नागिन का फन नीचे झुक जाता है। उसे
हंसना पड़ता है।

'जैसे वह कोई वड़ी मधुर आवाज हो ?'

'क्यों नहीं ? उनमें शायद एक आवाज वार-वार कहती-सी
पड़ती है—'मैं सुखी हूं, मैं सन्तुष्ट हूं, मैं मस्त हूं।'

'किंतु मैं तो उसमें और ही कुछ सुन रही हूं।' सुरभि वरामदे
खम्भे का सहारा लेकर खड़ी हो जाती है।

'अच्छा !'

'हां, मुझे तो लग रहा है उसकी नाक कह रही है—'मैं

बोदा हूं, मैं ईडियट हू, मैं वृद्ध हूं।'

सदीप, अजीब ढग से हंसता है।

'चलो, सो जायें।' सुरभि से कहता है।

सुरभि के शरीर का रक्त उसकी नसों में भयानक वेग से नाचने लगता है। वह सैकड़ों टुकड़े होकर सदीप के सामने बिखर जाना चाहती है। फिर भी वह कुछ नही कर पाती। वह सदीप के कधे पकड़कर उसे झकझोर कर कह नहीं पाती, कि वह आदमी नही पत्थर है। वह उससे पूछ नही पाती—'तुम्हारी इस बनावटी भावुकता का मुझे कब तक मूल्य चुकाना पड़ेगा ? यह सब मेरे लिए अब असह्य हो उठा है।' मगर यह सब कुछ कह या कर नहीं पाती वह। होता केवल यह है कि वह चुपचाप अपने कमरे में चली आती है और एक गिलास पानी अपने माथे पर उड़ेल लेती है।

फिर भी सवेरे उठने पर उसे बड़ी लज्जा लगती है। पिछली रात का अपना आक्रोस उसे बड़ा अजीब लगता है और वह अपनी दुर्बलता दिखाने का पागलपन नही कर बैठी, इसके लिए अपने प्रति कृतज्ञ होती है। और वह कृतज्ञता जैसे उसकी बातचीत मे छलकती रहती है। मगर शायद रात वाले सितारे सूरज की ओट मे छिपकर मुस्कराते रहते है।

अतीश के खर्राटो का जिक्र होता, सदीप की मध्यरात्रि वाली आकाशचारी भावुकता का जिक्र होता और अन्त मे घोषणा होती है कि वे दोनों परीक्षा मे सफल रहे।

मगर केवल नसों मे नाचता हुआ विष ही समस्या थी, यह बात भी नही है। उसके अन्दर एक और भी तनाव बढ रहा था। एक बार मन मे आता—'किसलिए मैं ही मा-बाप की चिंता मे जान दूं ? क्यों कोई अच्छी चीज मुंह मे डालते ही उनका रूखा-सूखा याद आ जाता ? क्यों लगातार उसके अन्दर एक आवाज कहती रहती है कि तुम अन्याय कर रही हो, अपराध कर रही हो। बड़ीदी, मझलीदी तो कभी ऐसी बात नही सोचतीं। अपनी-अपनी गृहस्थी लेकर आराम से दिन काट रही हैं।'

...भी कभी उसे लगता है वह बहुत नीच है। बहुत ही स्वार्थी...
...ह तो कोई अपने मां-बाप के साथ नहीं करता होगा। इस तरह घर
...कल आना असभ्यता की बात है। वह यह भी कह सकती थी कि
...वाहर बदली हो गई है अथवा आने-जाने में असुविधा हो रही है।
...सा झूठ बोलकर दोनों पक्ष के सम्मान की रक्षा कर सकती
...।

मां-बाप के मान और मन को लेकर परेशान होते सुरभि को कभी
...ही देखा गया था। मगर आजकल सुरभि उन्हीं बातों को लेकर काप...
...परेशान दीख पड़ती है। मां को उसने जो कड़वी बातें कहीं थीं उनकी य...
...भी उसे सालने लगी है।

सोचती है, अब उनके साथ कोई अन्याय वह नहीं होने देगी। महीने
का पैसा कैसे पहुंचाएगी ? किसी के हाथ भेज देगी अथवा मनीआर्डर कर
देगी ? इस जीवन में अब उस घर की अंधेरी ड्योढ़ी लांघने से रही वह।
मगर वही तो एक रास्ता है मुक्ति का। क्या वह अपने ही हाथों उस रास्ते
में कांटा बोएगी ?

कई दिनों तक वह अनिश्चय में झूलती रही। एक महीने के बदले डेढ़
महीना हो गया, और देर करना अमानुषिकता होगी साहस करके वह
निकल पड़ी। गली में घुसते ही उसका हृदय कांप उठा और दरवाजे की
सांकल खड़काते हाथ जैसे उठ ही नहीं रहे थे।

पहले तो उससे कोई बोला ही नहीं। फिर जगमोहन जैसे दीवा...
को सुनाकर बोले—"पाप का अन्न जब खाना ही है और चांदी का जू...
सिर पर लेना ही है तो लो, मगर उससे कह दो रुपया मनीआर्डर...
भेजे।'

अपर्णा सोचती थी सुरभि रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजेगी। घ...
मुंह दिखाने नहीं आयेगी यह। वह कुछ बोलना नहीं चाहती थी, मग...
जगमोहन ने चुप्पी तोड़ ही दी तो उनसे भी बोले बिना न रहा...
किंतु उन्होंने बात स्वामी के विपरीत ही कही।

'विष खाकर हम मर नहीं सकते तो बेकार ये सब बातें...

मतलब क्या ? चुप रहो।' सुरभि को गुस्सा तब भी नहीं आया। उसने देखा, मा आधी रह गई हैं। पिता का विस्तर तार-तार हो गया है। लगता है मा के शरीर में दम नहीं रहा। मरने बैठ गई हैं! सोचा, मां से कहेगी कि वह कुछ और रुपये देगी। एक दाई रख लें। मगर कह नहीं सकी। उसके बदले धीमे स्वर में केवल इतना कहा—'यह मेरी तनखा का रुपया है मा।'

काफी देर चौकी पर बैठी रही। अपर्णा एक बार जो रसोई-घर में घुसी तो बाहर ही नहीं निकली। सुरभि कब उठकर चली गई इस पर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

लौटते समय सुरभि बार-बार अपनी आखें आचल के छोर से पोंछती हुई सोच रही थी कि हमारा अपना कोई घर होता, अपनी कोई गृहस्थी होती, स्वाभाविक गृहस्थी, तो वह मा और पिताजी को जबर्दस्ती अपने घर ले जाती। कहती—'तुम लोगों की देख-भाल कौन करेगा, बोलो।'

किन्तु इस अद्‌भुत गृहस्थी में उस प्रकार की बातों के लिए स्थान नहीं है। वह इसे गृहस्थी भी कैसे कह रही है? वह तो तीन आदमियों का मेस है, मेस।

'कहा गई थी?' अतीश ने पूछा।

'घर।' सुरभि ने थकी हुई आवाज में कहा।

'तुम्हारा चेहरा देखकर मैं भी यही अनुमान कर रहा था। कैसी आव-भगत हुई?'

'चुप्पी से।'

'हूं, मैं भी कल दीदी के घर गया था। पुराने आश्रय के प्रेम के कारण नहीं। केवल कर्त्तव्यवश। दीदी ने कहा कि…।'

'क्या कहा?'

'कहा कि पराया कभी अपना नहीं हो सकता। सगा भाई होता तो क्या ऐसा नमकहराम हो सकता था?'

'अतीश, पहले इस तरह की बात सुनकर मेरा जी जल उठता था।

र अब मैं चीजों को दूसरी तरह से देखने लगी हूं। जानते हो, आदमी जहां से आशा रहती है वहीं वह चोंच मारता है। किंतु आशा वह रखता किससे ? जिसे अपना समझता है उसी से तो ?'

'सुरभि, तुम्हारी इस थियोरी से मैं सहमत नहीं हो पा रहा हूं।'

'हो सकता है, मगर है यह सच।'

'लगता है, घर से कुछ अधिक ही अपमानित होकर आई हो।'

'ना, ऐसा होता तो अच्छा ही था।'

'ओह, शायद तुम्हारे बिना उन्हें काफी कष्ट हो रहा है ?'

सुरभि की आंखों में आंसू आ गए। उसने सोचा—आकाशचारी संदीप यह सब नहीं समझता है, जैसे अभी अतीश ने समझ लिया।

उसी दिन से जाने क्या हुआ कि वह जीर्ण मकान और गंदी गली सुरभि को प्रबल वेग से खींचने लगे। क्यों न वह एक जोड़ा साड़ी ही खरीद कर मां को दे आए ? अभी तो महीना होने में काफी देर है जग-मोहन ने अवश्य कहा था मनीआर्डर से रुपया भेजने के लिए मगर अपर्णा ने साफ-साफ नहीं कहा था कि वह मुंह दिखाने कभी न आए।

सुरभि ने मां के लिए चुनकर दो ठो चौड़े पाड़ की साड़ी खरीदी और एक पैकेट सिंदूर। फिर सोच-विचार करके पिता के लिए एक पैके बिस्कुट और थोड़ी-सी खजूर खरीदी। जगमोहन को खजूर बहुत अच लगती है।

अपर्णा ने ही दरवाजा खोला। और कौन खोलेगा ? जगमोहन घाते तो भी जहां तक होता उठते नहीं। इस बार अपर्णा के मं पहले ही निकला—'अरे फिर आ गई ?'

'क्यों, आना नहीं चाहिए था क्या ?'

उन्होंने कुछ कहा नहीं। जल्दी से घर में चली गईं और जा जगमोहन से धीमे से कहा। शायद चिल्लाने को मना किया था कोई बात, मगर उस दिन सुरभि ने पिता की उपस्थिति अनु की।

सुरभि ने हाथ का पैकेट नीचे रखकर इधर-उधर देखकर

'पानी का घडा कहां है ?'

'टूट गया है।' फिर रसोई घर में से एक गिलास पानी लेकर सुरभि के सामने ला रखा। सुरभि ने पानी पीने की बात नहीं सोची थी। सामने घडा रखने का टीहा खाली देखकर ही अकस्मात् उसने पूछ लिया था। मगर सामने पानी आते ही उसे लगा वह बहुत प्यासी थी। गिलास उठाकर एक ही सास में गटक गई।

अपर्णा ने इस बार आख में वह आए आंसुओं को छिपाने की चेष्टा नहीं की। कांपते गले से बोली—'अगली बार आना तो थोडी-सी मिठाई साथ लेती आना। इतनी धूप में चलकर आ रही है और मैंने एक गिलास पानी सामने रख दिया। करती भी क्या ?'

सदीप को कुछ भी पता नही चलता है। वह कुछ ख्याल नहीं करता। अतीश को सब पता चलता है। छोटी-सी बात पर भी उसकी नजर पडती है।

'आजकल देखता हू, रोज ही घर जाना हो रहा है।'

'वाह, रोज कहा जाती हू ? परसों गई थी बाबू जी की दवा देने और मां के लिए दाई का इन्तजाम करने।'

'यह सब व्यवस्था स्वीकार हो रही है ?'

'होगी क्यों नहीं ? मैं क्या ऐसे ही छोडने वाली हू।' फिर एकाएक ही जैसे बुझती हुई-सी बोली 'अगर हमारा अपना कोई घर होता, अपनी गृहस्थी होती तो क्या मैं उन्हें ऐसे अकेले रहने देती ?'

'सच बात है।' अतीश ने गभीर होकर कहा।

सुरभि के लिए उसके पुराने सबध नये सिरे से मूल्यवान हो उठे थे। कभी बड़ीदी के यहा जा रही है, तो कभी छोटीदी के यहा। जाती भी तो खाली हाथ नहीं। कुछ न कुछ ले ही जाती थी। दीदी लोगों के लिए छोटी-मोटी चीजें और बच्चों के लिए चाकलेट-बिस्कुट।

दीदी लोग भी सुरभि को पहले से कही अधिक मानने लगी हैं। चलते समय बार-बार कहती हैं, 'फिर आना, सुरभि।' कभी कहती है, 'एक

के समय आओ न। एक साथ बैठकर खाना-
ी दीदी हंसकर कहती है—'क्यों रे, अभी चारा ही लगाए बैठी
इनमें से एक भी अभी तेरी कंटिया में नहीं फंसा ?'
ू, असभ्य कहीं की।' सुरभि कहती, 'हम लोग वैसे नहीं हैं। क्या
लड़के दोस्त नहीं हो सकते ?'
हो क्यों नहीं सकते ? सोने का सिल-लोढ़ा भी हो सकता है। मगर
ा में ही, वास्तव में नहीं।'

'देखना।'

'देखूंगी।'

जब कोई सुरभि को धिक्कारता नहीं। कोई उसे देखकर मुंह नहीं
बिचकाता। शायद यही दुनिया का नियम है। जब तक कोई चीज हाथ
में होती है, तभी तक उस पर जोर चलता है और आदमी उसके प्रति
सदय नहीं हो पाता, मगर ज्योंही वह वस्तु हाथ से खिसककर गिर गई,
आदमी का मन बदल जाता है। तब उसे उस चीज को पाने की चिंता
हो जाती है। उस वस्तु को एक बार स्पर्श करने मात्र के लिए व्याकुलता
होने लगती है।

सुरभि अक्सर रुआंसी-सी होकर फिरती है उन लोगों के पास से।
फिर अतीश से बातें करती है, कभी भारी मुंह और कभी हंस-हंसकर।
संदीप से वह ये सब बातें किसी तरह नहीं कह सकती। सुरभि रोज घर
जाती है, यह बात संदीप से कहना बड़ा कठिन काम है। वह संदीप की
नजर में छोटा बनना नहीं चाहती। कभी-कभी संदीप के ऊपर उसे भयं-
कर क्रोध आता है। क्यों उसके अन्दर कोई दुर्बलता नहीं है ?

कई महीने यों ही गुजर गए। इस बीच सुरभि माता-पिता के अं
बड़ा परिवर्तन लक्ष्य कर रही है। उसके घर पहुंचते ही जगमोहन चाय
शर्बत बनाकर उसे देने के लिए अपर्णा को परेशान कर डालते हैं।
क्या कर रही हो इतनी देर से ? लड़की धूप में चलती हुई आई है

ऐसे समय सुरभि को याद नहीं रहता कि उसी बाप ने एक दिन उसे यह कहकर लांछित किया था कि वह उसके मुंह में कालिख लगा रही है। सुरभि का दिल पिता के प्रति कृतज्ञता से भर उठता। वह बोल उठी—'इतना परेशान होने की क्या जरूरत है बाबू जी ?'

अपर्णा भी नाराज नहीं होती। दूसरे कमरे में से आकर पास खड़ी हो जाती है।

'दे रही हूं। कोई अतिथि तो है नहीं सुरभि।'

सच, अतिथि के समान ही आदर होता है सुरभि का। सुरभि कहती है—'शर्बत की जरूरत नहीं है। न हो तो एक कप चाय ही बना दो [illegible] तुम्हारे हाथ की चाय पीने की आशा में सवेरे से चाय नहीं पी [illegible]

अपर्णा चाय का सरजाम लेकर सुरभि के पास आ बैठती है [illegible] अपनी अक्लमंद छोटी लड़की से मूर्ख बड़ी लड़कियों की [illegible] देती है—'सुरभि, सच कहती हूं, लगता है वे सब तो हम [illegible] जाए तो एक बार हाल पूछने नहीं आएंगी। तुम कभी-कभी [illegible] तो सन्तान का मुंह देखने को मिल जाता है। हम बूढ़ा-बुढ़ी [illegible] दिन मर जाएं तो शायद उनको तो खबर भी नहीं होगी। [illegible] तो तुम्हें ही हमारी सड़ी-गली लाश उठानी पड़ेगी।'

सुरभि उनके साथ नहीं रहती, शायद यह बात अब उन्हें [illegible] नहीं आती। उन्हें तो केवल यही याद रहता है कि वह उनके [illegible] है। अपर्णा फिर कहती है—'सुनती हूं तू उनको [illegible] देती रहती है ? आखिर वह किस खुशी में ? वे भी तुझे [illegible]

'अरे नाम मत लो उन सबका।' [illegible]

इस समय सुरभि के घर की यही अवस्था है।

अतीश का तो घर ही नहीं है। [illegible] वे उससे कोई उम्मीद नहीं करते हैं। [illegible] में लिख रखा है। मगर राजकोट [illegible] मोड़ पर ?

क्या वहां भी लोग कहते होंगे—'नाम न ...
आवारा लड़के का ?'

'नहीं। वहां पर ये सब बातें नहीं होतीं। उस मकान की ईंट-ईंट एक विचित्र निस्तब्धता से आक्रांत है। जैसे कोई अदृश्य तर्जनी तन-र कहती है—'उसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।'

शुरू में यह बात माधुरी की समझ में नहीं आई थी। इसीलिए वह कई दिनों तक आते-जाते संदीप को सामने पाकर कह देती थी—'सुना था कि जाते ही पता भेज दिया जाएगा। उसका कोई भी तो लक्षण नहीं देख रही हूं।' अथवा किसी और दिन कहती—'साधु-संन्यासी भी जिस गुफा में ज्यादा दिन रह लेते हैं, उसके प्रति उनको मोह हो जाता है। मगर देख रही हूं ये लोग उनसे भी आगे बढ़ गए हैं।'

इसके जवाब में प्रदीप ने गंभीर कंठ से कहा—'माधुरी अगर तुम्हें कोई काम न हो तो मेरी पैंटों में टूटे बटनों की जगह नये लगा दो।'

माधुरी अपनी बातों का ऐसा विचित्र प्रतिवाद सुनकर अवाक् नहीं होती है। केवल दांतों से होंठ काटते हुए वहां से चली जाती है। प्रदीप का शासन इतना ही होता है। इससे अधिक नहीं। मगर इसका असर होता है। यह चीज दवा की तरह है। ठीक मात्रा में देने पर काम करत है और अगर अधिक हो जाए तो उसका बुरा प्रभाव भी हो सकता है।

किसी दिन अकेले में मां-बेटे में इस प्रकार की बातें होतीं। उज्ज्व दीप पूछता—'चाचा क्या फिर कभी नहीं आयेंगे ?'

माधुरी शांत कंठ से कहती—'आयेंगे। हमारे मरने पर।'

'क्यों, तुम्हारे साथ उनका झगड़ा हुआ है क्या मां ?'

'हां, हमारे साथ तो उनका जीवन-भर का झगड़ा है।'

'धुत्' उज्ज्वलदीप समझता है मां उसका मजाक उड़ा रही है। उसकी मां के साथ किसी का झगड़ा भी हो सकता है ऐसी अद् वह सोच भी नहीं पाता। गुस्सा होने पर जरूर मां का चे कैसा लाल-लाल और कठोर हो जाता है, किंतु उसी समय चुप हो जाती है। फिर उसके साथ किसी का झगड़ा

समझूंगा, इस दुनिया में कोई एक ...। संदीप की बात
सारी दुनिया की बात करने नहीं आई हूं।
।'
...ह ! संदीप। मगर अचानक तुम्हें उसका नाम ही भूल जायेगा,
कैसे जान सकता था?'
भूल जाने की बात तो नहीं कह रही थी, परन्तु अब तो उसका
जबान पर लाने की भी इच्छा नहीं होती। निश्चय ही तुम्हारे समान
पुरुष की और बात है। तुमको तो किसी बात से कष्ट ही नहीं होता
जानते हो, वह क्या कर रहा है? घर छोड़कर बाहर रहने का कारण
...नते हो? एक आवारा-सी लड़की को लेकर...।'
'आरती...हूं।'
'देखिये भाई साहब, मैं बिना जाने-बूझे कोई बात नहीं कह रही हूं।
मैं अपनी आंखों से सब देखकर आ रही हूं।'
'देखकर?'
'हां, हां, जानती हूं न। तुम लोग तो किसी की बात पर विश्वास ही
नहीं करते। इसलिए सोचा खुद जाकर देख लेना चाहिए।'
आरती प्रदीप के मुंह की ओर गौर से देखती है। उसकी प्रतिक्रिया
जानना चाहती है। किन्तु उसका चेहरा देखकर कुछ समझ नहीं पा रही
है। प्रदीप ने उसकी बात सुनी है, ऐसा भी उसे नहीं लगता। इसलिए उसने
गला थोड़ा और चढ़ाया। भाई का स्वाभाव जानते हुए भी। बोली—
'जाकर जो देखा...छिः छिः, कोई अपूर्व सुन्दरी होती तो वह भी माना
जाता। एकदम मामूली लड़की। अलबत्ता मुंह की गढ़न थोड़ा...।'
'आरती, तेरा बड़ा लड़का किस क्लास में पढ़ रहा है?'
आरती का चेहरा और लाल हो उठा—'तुम मेरी बात न सुन...
चाहो, न सुनो मगर एक बात कहे जा रही हूं। तुम लोग शुतुरमुर्ग...
तरह अपनी गर्दन बालू में गाड़कर भले रहो, और लोग ऐसा कभी...
करेंगे। संदीप अगर किसी और जाति की लड़की से शादी रचाता...
शायद एक बात होती। कोई कुछ कहने नहीं जाता। मगर इस तरह...

ठीक है। तुम यही मानकर बैठे रहो। मगर एक बात कह...
...रही हूं। अगर समय रहते संदीप को उचित शिक्षा और अनुशासन
...गया होता तो लड़का इतना नहीं वह जाता।'

आरती नाराज होकर चली जाती है। मगर उज्ज्वलदीप, जिसने
...रे के वाहर से सभी बातें सुन ली थीं, मौसी के चले जाने के पूर्व ही
...से आकर उन्हें पकड़ लेता है।

'बुआ, तुमने चाचाजी का घर देखा है?'

'हमारा देखना, देखना ही नहीं है, वेटा। तुम्हारा वाप, जव उसकी
आंख में उंगली डालकर कोई दिखाएगा, तभी देखेगा।' कहकर एक प्रकार
से उसे ठेलकर आरती बाहर निकल गई।

आंखों को पोंछती हुई आरती गाड़ी में जा बैठी। सोचा था ऐसी
महत्त्वपूर्ण घटना भाई को बताने जा रही है। कम से कम कान देकर
सुनेंगे। मगर आरती पति-पत्नी तो जैसे प्रदीप के लिए सदा के फालतू हैं।
अच्छी वात है। अब इस मकान की परछाईं भी वह नहीं काटेगी। अम्मा-
बाबू जी ही जब नहीं हैं तो इस घर में उसको कौन पूछता है।

भाग्य से गाड़ी में और कोई नहीं था। ड्राइवर मालकिन के रोने की
आवाज नहीं सुन सका। सच, आरती ने संदीप का पता लगाने में बड़ी
दौड़-धूप की थी।

चलो कुछ तो हुआ। उस पतुरिया को दो-चार खरी-खोटी तो सुन...
आई। इतनी परेशानी का यही लाभ सही। पहले तो बड़ी चकराई, प...
जब सुना कि संदीप की दीदी हैं तो कैसी मेमना बन गई। हुंह, जो प...
करता है वह क्या कभी किसी से आंख मिला सकता है?

आरती ने जाते ही एक बेढब सवाल किया था—'इस घर का मा...
कौन है?' सुरभि ने चेहरे पर चरम घृणा का भाव लाकर कहा ...
'क्यों, क्या इस घर की मालकिन मैं नहीं हो सकती?'

'तुम? अकेली लड़की?'

सुरभि को आरती 'आप' कहेगी ऐसी आशा करना ही गलत है...

अपने लिए 'तुम' सुनकर सुरभि का जी जल उठा था। उसने कहा था—
'लगता है आपने किसी लड़की को अकेली रहते नहीं देखा है।'
'देखा क्यों नहीं है?' आरती ने भी चोट की थी। 'ऐसे ढंग की महिलाओं को देखा है, जैसे मास्टर, प्रोफेसर, डाक्टर। इस तरह की औरतों को।'
'मैं वैसी नहीं हूं, यह कैसे जान गई आप?'
आरती की आवाज में जैसे भाले की नोक उभर आई थी। उसने कहा था—'तुम क्या हो यह जानकर ही मैंने यह बात कही है। वह [illegible] है कहां? संदीप राय। घर पर नहीं है शायद।'
सुरभि चौंक पड़ी। सोचती थी मुहल्ले की कोई अति कौतूहली महिला है। इस बार थोड़ा नरम होकर बोली—'संदीप की आप कुछ लगती हैं?'
'ना, अब कोई नहीं हूं। आज तक उसकी बड़ी बहिन थी। खैर, सब देख-समझ लिया। वह होता तो केवल एक बात उससे पूछती—मदन राय का बेटा होकर कैसे उसकी रुचि इतनी हीन हो गई?'
संदीप की दीदी।
सुरभि चुप रह गई।
किंतु अतीश जब आया तो वह फट पड़ी थी।
'तुम लोगों की यह अपूर्व योजना इस देश में नहीं चलेगी, समझे और नहीं तो तुम लोगों ने यही समझ लिया है कि हमारी गर्दन पर ही सब पाप लादकर तुम लोग बरी हो जाओगे। जानते हो आज संदीप की दीदी क्या-क्या बक रही थी?'
और उसने सच्चाई के साथ अपने दिल की सारी भंड़ास मिलाकर आरती-प्रसंग का नमक-मिर्च लगा वृत्तांत अतीश के सामने पेश किया था।
अतीश उस दिन बहुत देर तक विचारों में डूबा रहा। सच, यह क्या हो रहा है? पहले वाला मन जैसे अब बदल गया है। अब तो लगता है एक-एक दिन जो समय बीतता जा रहा है, वह धीरे-धीरे उसे तोड़ रहा है।

'संदीप कब गया है ?'

'वही, सवेरे।'

'आज उसे आने दो। इसका फैसला करना होगा।'

'किस बात का ?' सुरभि शंकित हो उठी थी।

'इसी स्थिति का।'

'वह भी तो सुरभि के लिए लज्जा ही की बात होगी। इसका मतलब यह है अपनी हार स्वीकार करनी होगी, उस पत्थर के देवता के सामने। छिः-छिः।'

बोली—'इसमें फैसला क्या करना है ? हम लोग क्या नाबालिग हैं ? क्या वह हमें जबर्दस्ती ले आया है ? हम तो अपनी इच्छा से ही उसकी योजना में शामिल···।'

'बड़ी-बड़ी बातें करके उसने हमें विभ्रमित कर दिया था।'

'वह तो आज भी बड़ी-बड़ी बातें ही करता है। छोटी बातें उसने कब कीं ? वह तो आज भी बड़ा है।'

'तुम ठीक कहती हो।' अतीश आहत हो उठता है। वह अपमानित अनुभव करता है। और आहत अपमान का स्वर उसके स्वर में बज उठता है।

'छोटा तो मैं हो रहा हूं सिर्फ।'

सुरभि चौंककर उसके चेहरे की ओर ताकती है। फिर उसकी आंखों में एक अद्भुत और रहस्यमय मुस्कान निखर आती है—'तुम नहीं। हम दोनों।'

लो, स्वीकार कर बैठीं न सुरभि।

अब और नहीं लड़ पा रही थी वह अपने से। विक्षुब्ध मन का आक्रोश उसके संभाले नहीं संभल रहा था। उसके मन का द्वंद्व भी अब समाप्त हो रहा था 'कस्मै देवाय' का प्रश्न उत्तरित हो चुका था। उसने समझ लिया था कि संदीप की ओर केवल देखा जा सकता है। श्रद्धा, विस्मय और प्रशंसा की दृष्टि से उसका अभिनन्दन किया जा सकता है। उसकी ओर हाथ नहीं बढ़ाया जा सकता। सुरभि को चाहिए ऐसा आदमी जो

उसकी मुट्ठी में हो। सपने देखनेवाला नहीं, हाड़-मास का बना एक वास्तविक आदमी।

'सुरभि।' अतीश ने सिनेमा के नायक के समान भाव-विह्वल स्वर में पुकारा, 'सुरभि !' अचानक एक रहस्यमय जगत् का द्वार खुल गया। सतरंगे आलोक से अंतर का कोना-कोना रंगीन हो उठा। इतने दिनों का परिचित व्यक्ति जैसे एकदम नया-नया-सा लगने लगा। वह लुका-चोरी, आंखों-आंखों में कुछ कह लेने की कामना, संदीप के सामने ही उसकी नजर बचाकर उंगली से उंगली छुआ लेने की चातुरी और जब-तब सहज वाक्यों के बीच अर्थ की एक और व्यंजना भरकर मुस्करा पड़ना—ओह ! कैसा अनास्वादित सुख है, कितना अनिर्वचनीय आनंद है।

अब वे संदीप को अपने से बड़ा नहीं मानते। उन्हें संदीप एक छोटा-सा अबोध शिशु लगता है और वे उसकी अबोधता का आस्वादन कर रहे हैं। संदीप उनके इस गुप्त खेल का रहस्य नहीं जान पा रहा है, इससे बड़ी मजे की बात और क्या हो सकती है ?

संदीप कभी-कभी टोकता है—'अतीश, देखता हूं, तू स्थविरत्व को प्राप्त हो रहा है। आफिस जाने के अलावा तू कभी घर से निकलता ही नहीं।'

कभी-कभी वह सुरभि से भी कहता—'सुरभि, तुमसे मुझे बड़ी आशाएं थीं, मगर देखता हूं तू भी धीरे-धीरे होपलेस होती जा रही है।'

'केवल होपलेस ?' अतीश कनखियों से सुरभि की ओर देखकर मुस्कराता—'अरे ! मर्डर-केस है यह तो।'

एक दिन संदीप ने कहीं घूम आने का प्रस्ताव किया। उस दिन वह बड़ा अस्थिर लग रहा था। छोटे-छोटे तीन कमरों और एक पतले से बरामदे में सीमित जीवन उसे असह्य-सा लगा था। थोड़ी देर के लिए वह उस वातावरण से मुक्ति पाना चाहता था। उन दोनों ने भी इस प्रस्ताव का समर्थन किया, सुरभि और अतीश ने, जिनका जीवन सहसा फूल की तरह हलका हो उठा था, जो मुक्ति की आकांक्षा की छटपटाहट को पार करके

के स्वप्न में विभोर हो रहे थे।

'बहुत खूब, बहुत खूब। तो फिर आज की छुट्टी रहे। चलो

लना है ?'

'जहां तक दोनों पैर ले जाएं।'

'वाह, सुनने में तो बहुत अच्छा लग रहा है, मगर बात यह है कि रेलवे ने ऐसी स्वाधीनता तो दी है नहीं 'कि जहां चाहे चला जाए। वह तो मील गिनकर किराया लेती है और गंतव्य-स्थल को भी जानना चाहती है।'

'तो तुम्हीं तय करो हमें कहां जाना है ?'

'हमीं लोग माने ?' सुरभि ने भौंहें ऊंची कीं, 'हम लोगों को इस तरह एक कोष्ठक में बांधने का मतलब ?'

'मतलब क्या ? तुम लोग इन सब मामलों में मुझसे ज्यादा समझदार हो, इसीलिए।'

'अच्छी बात है। मैं कोई एक जगह तय कर रही हूं। बस एक टाइम-टेबुल चाहिए।'

टाइमटेबुल आया। कई दिनों तक अतीश और सुरभि में बहस चलती रही, सुरभि जो जगह ठीक करती अतीश उसे रिजेक्ट कर देता और अतीश जिस जगह की सिफारिश करता उसे सुरभि अनफिट कर देती। हार कर दोनों व्यक्ति संदीप से पूछने आए। संदीप ने कहा—'मुझे कुछ नहीं कहना है। केवल एक बात कहनी है कि कलकत्ता छोड़कर सौ मील दूर कहीं जाया जाए।'

'मन्दार हिल कैसा रहेगा ?' सुरभि ने कहा।

'वहां भले आदमियों के रहने लायक कोई होटल मिल सके बात का पता है ?

'तुम्हें।' अतीश ने शंका की। सुरभि को गुस्सा आ गया।

—'अच्छा होटल चाहिए तो बम्बई जाओ, कश्मीर जाओ।'

'राजगिर ही क्या बुरा है ?' संदीप ने सुझाव दिया।

'बुरा क्या है किन्तु वहीं कौन हमारे लिए किसी सुरम्

दरवाजा खोले बैठा है ?'

'सुना है वहा एक गेस्ट हाउस भी है।'

'सुना तो सभी ने है मर जाते ही मिल जाएगा यह कौन जानता है ?'

'ऐसी गारंटी इस युग में किसी चीज को नहीं है। किसी मामले में नहीं। सभी जगह वही बात है। दवात है तो स्याही नहीं और स्याही है तो दवात नहीं।'

'और यदि कौशल हो तो उस दवात में भी गंगा को उतारा जा सकता है।'

'हां, एकदम ठीक। मगर उसके लिए भगीरथ का प्रयत्न करना पड़ेगा।'

इसी बीच अचानक सदीप के मुह से निकल गया—'राय-परिवार का भी एक मकान राची में है।' मगर इतना कहकर ही वह चुप हो गया। क्या जरूरत थी यह बात कहने की ? सदीप क्या प्रदीपराय के पास उस मकान की चाबी मागने जा सकेगा ? एक माली है अवश्य वहा और उसके पास एक चाबी भी होगी। किन्तु सदीप क्या उससे कह सकेगा—'कमरे खोल दे, मैं अपने इन मित्रों के साथ कुछ दिन रहूगा यहा। क्या प्रदीप को बिना सूचित किए ! छि: । क्यों कह दी मैंने वह बात ? वह पछताने लगा।

'वाह क्या बात है ! क्या कही है तुमने भी सौ टके की बात।'

'धत्।'

'धत् माने ?'

'मैंने तो केवल यह कहा था कि वहां राय-परिवार की एक एक कोठी है।'

'इसका मतलब है तुम्हारा उसमें कोई हक नहीं है, यही न ?'

'हक ! हक वाली बात बहुत साफ नहीं है। हक दो प्रकार का होता है। एक तो…।'

'रहने दो।' इतनी सफाई देने की कोई जरूरत नहीं है। यह समाचार

देते तो भी क्या हर्ज था ?'
समय तो बात कुछ ऐसी ही है।' संदीप बोला।
तीश, मुझे लगता है संदीप राय-परिवार का पाला हुआ लड़का
ने दिन दया करके उन लोगों ने उसे घर में रहने दिया। अब इसका
चलन बिगड़ते देखकर उन लोगों ने इसे मारकर घर से भगा
है।'

संदीप हंस पड़ता है।

हंसा अवश्य था वह, मगर उसकी हंसी असली नहीं थी। एक पल
द ही लुप्त हो गई। बीच-बीच में वह घर जाएगा ऐसी बात उसने कही
ी। वह वादा क्या वह निभा पाया है ? नहीं। वह चाह करके भी नहीं
कर सका था। बार-बार घर के पास जाकर लौट आया था। उसे राय
कोठी का गेट हिमालय की तरह अलंघ्य लगता था।

अन्त में देवघर जाना ही तय हुआ। ज्यादा दूर जाने से फायदा
क्या ? वहां पर सुना जाता है बहुत-से आश्रम हैं। उन्हीं में से किसी एक में
जाकर कहा जाएगा—'प्रभु, हम तीनों प्राणी शरणागत हैं। हमारा परि-
त्राण कीजिए।'

थोड़ी देर बाद सुरभि चली जाती है। अतीश भी थोड़ा इधर-उधर
की बात करके खिसक जाता है। संदीप को लगता है वे दोनों समगोत्र हैं।
इसलिए वे दोनों एक-दूसरे के इतने निकट आ गए हैं। संदीप अकेला रह
गया है। कहीं कुछ बेसुरा हो गया है। बाहर जाने पर तो यह छंदभंग और
भी असहनीय हो उठेगा। किन्तु संदीप ही तो इस सुर का रचयिता है।

फिर भी उनका जाना न हो सका। अचानक संदीप के शरीर
सारे तार झनझना उठे। संदीप अखबार पढ़ रहा था। पढ़ क्या
या अखबार की सुर्खियों पर नजर फेर रहा था। अतीश अखबार प
समाप्त करके एक बार सुरभि के पास घूम आने का बहाना ढूंढ़
या।

अचानक उसने देखा संदीप के हाथ से अखबार गिर पड़ा और

गले मे एक अस्फुट आर्त्तनाद-सा निकल पड़ा ।

'क्या हुआ ?' अतीश ने पास आकर पूछा ।

सदीप कुछ बोला नही । उठकर खूंटी पर से अपने कपड़े उतारने लगा ।

'आखिर बात क्या है ? बाहर जा रहे हो क्या ?' अतीश ने फिर पूछा ।

सदीप बिना बोले दालान से उतर गया ।

'अरे सदीप ! पागल हो गया है क्या ?' अतीश ने पीछे से चिल्लाकर पूछा । सदीप फिर भी चुप रहा । चला गया बिना कुछ उत्तर दिए ।

सुरभि खाना पका रही थी। उसके कानों में अतीश की अन्तिम चीत्कार गई । 'क्या हुआ ?' उसने भी रसोई घर से निकलकर पूछा ।

'पता नही । बाबू साहब अखबार पढ रहे थे । अचानक अखबार हाथ से गिर पड़ा और श्रीमान् कपडे पहनकर निकल गए ।'

सुरभि ने तुर्रा कसा—'उसको आजकल जाने क्या हो गया है ? आधी बातों का उत्तर ही नही देता ।'

'मुह से चाहे जो कहे, पर वह एक बड़े आदमी के घर का लडका है, यह बात वह किसी तरह भूल नही पाता, शायद ।'

'मुझे भी ऐसा ही लगता है ।'

'हम लोग अपने मन से तो उसके साथ रहने आए नही थे ।' अतीश ने क्षुब्ध स्वर में कहा ।

सुरभि कुछ कहने जा रही थी । अचानक रुककर एक पल जैसे कुछ सोचने लगी । फिर बोली—'तुमने चिल्लाकर उससे पूछा, फिर भी वह नहीं बोला ? क्या इसका कोई खास कारण नही हो सकता ?'

'कारण और क्या होगा ? वह हमें तुच्छ समझता है ।'

'अच्छा, एक बात बताओ । कही अखबार मे तो उसने कोई बुरी खबर नहीं पढ़ी ?'

'बुरी खबर ?'

'मतलब ऐसी खबर, जिसे पढकर वह एकाएक घबरा [illegible] हो ।'

'अखबार में ऐसी खबर क्या हो सकती है ? बैंक फेल ?'

'बैंक फेल होने पर घबराने वाला लड़का तो वह है नहीं ।'

सुरभि ने झपटकर अखबार उठाया। एकाएक वह चिल्ला पड़ी।

'अरे संदीप के भाई साहब…।'

'संदीप के भाई साहब ? तस्वीर निकली है क्या हुंह, बड़े लोगों की तस्वीर तो अखबारों में छपती ही रहती हैं।'

'अरे ! नहीं-नहीं, यह तो बुरी खबर है ! मोटर ऐक्सीडेंट ।'

'मोटर-ऐक्सीडेंट ? संदीप के भाई साहब का ? कहां निकला है ? देखूं तो ।'

सुरभि अखबार लेकर अतीश के पास आ गई । दोनों पास-पास प्रायः सटकर अखबार पढ़ने लगे । 'सुप्रसिद्ध राय एंड कम्पनी के मालिक श्री प्रदीपराय जी० टी० रोड पर मोटर-दुर्घटनाग्रस्त। कल सवेरे दस बजे श्री राय…।'

यद्यपि सुरभि और अतीश को इतना सटकर बैठने की जरूरत नहीं थी, फिर भी जैसे अनजाने वे दोनों सटे हुए खड़े रहे।

'जी० टी० रोड जैसे महाभारत का बकासुर है। रोज उसे नरमांस का नैवेद्य चाहिए।'

'बकासुर को तो दिन-भर में शायद एक ही आदमी का मांस चाहिए था।' अतीश निर्निमेष भाव से सुरभि के चेहरे की ओर देखे जा रहा था।' यह तो एक दिन में दस-बीस आदमियों का नाश्ता कर जाता है।'

'यह बात है। इसका मतलब है संदीप वहीं गया है।'

'अब समझ में आ रहा है। मगर इस तरह पगलाने की क्या जरूरत थी ? कम-से-कम कहकर तो जाता।'

'तुमने पागल देखे हैं।' सुरभि उसकी आंखों में आंखें डालकर देखती है।

एक मिनट पहले उन्होंने अपने परम प्रिय मित्र के किसी आत्मीय के दुर्घटनाग्रस्त होने का समाचार पाया है, यह तो उनके चेहरे देखने से

नहीं लग रहा है। कम से कम सुरभि के मुख पर तो किसी दुर्घटना का चिह्न नहीं है। उसकी पुतलियों में एक विचित्र प्रकाश झलमल कर रहा है।

सुरभि की आंखों से आखें मिलते ही अतीश के चेहरे पर भी वही भाव उभर आता है। लगता है वह मधुर आलोक संक्रामक है। वह भी आखों में अद्भुत रस भरकर कहता है—'देखा है? अरे, रोज ही तो देखता हूं।'

'रोज देखते हो?'

'हूं! एक व्यक्ति को रोज देखता हू। वह रोज आधी रात को जाग उठता है, छत पर अकेला टहलता है, गहरी सासें भरता है, पानी पीता है और कभी-कभी सिर पर भी पानी डालता है।'

'बस करो, बहुत बातें बनानी आती है तुम्हें।'

सुरभि का चेहरा माधुर्य और आह्लाद की लहरों में भीग उठता है। फिर वह बोलती है—'रात-भर तो नाक बजती है तुम्हारी। कब देखते हैं उस व्यक्ति को जनाब?'

'देखने की जरूरत भी क्या है? अन्जाम से ही सभी बातों का पता चल जाता है।'

काफी समय इसी तरह की अर्थपूर्ण निरर्थक बातों में कट जाता है। अचानक अतीश को याद आता है कि उसका एक मित्र पागलों की तरह कुछ देर पहले यहां से चला गया है।

'मैं भी एक बार हो आऊं? क्या कहती हो?'

'जाना तो चाहिए अवश्य, मगर सदीप को अच्छा लगेगा या नही, यही बात सोच रही हूं।'

'पसन्द नहीं करेगा, क्या कह रही हो?'

'मैंने यह कब कहा कि नहीं पसंद करेगा। फिर भी···तुम तो जानते ही हो उसके घर के झमेले।

'अच्छा, आज रुक जाता हूं। जरा देख लिया जाए।' कहकर अतीश आश्वस्त होकर बैठ जाता है। उसका चेहरा देखकर लगता है—जान

बची लाखों पाए। कितना मजा आए अगर आज की छुट्टी लेकर दोनों कहीं घूमने चलें या फिर घर पर ही बैठकर मीठी-मीठी बातें करें। ऐसा मौका फिर शायद मिले न मिले। यह मौका किस मूल्य पर मिला है, यह बात अतीश के दिमाग में नहीं आई उस समय। सुरभि फिर रसोईघर में लौट गई थी। अतीश उसके पास यही प्रस्ताव लेकर चला। किसी का सर्वनाश —किसी का वसन्तमास।

जिसका सर्वनाश हुआ था, वह बेचारा सूखा मुंह लिए रायकोठी के गेट के सामने आ खड़ा हुआ। पता नहीं घर पर हैं भाई साहब या अस्पताल में, वह सोचने लगा। जो भी हो, घर तो जाना ही पड़ेगा। नहीं तो यह भी पता लगाना कठिन होगा कि वे किस अस्पताल में हैं, कितने नम्बर के बेड पर हैं।

नहीं, उस दिन लोहे का वह गेट हिमालय नहीं बन सका। बिना दायें-बायें ताके संदीप लोहे का फाटक ठेलकर सीढ़ियां फांदता ऊपर जा पहुंचा।

आश्चर्य ! ! !

अद्भुत लग रहा था संदीप को। वह सीढ़ी, वह बरामदा, सीढ़ियों से चढ़ते ही सामने माता-पिता का विशाल तैलचित्र, कोने में छोटी-सी तिपाई पर पीतल की बड़ी-सी फूलदानी, प्रत्येक कमरे के दरवाजे के ऊपर प्रतापराय द्वारा मारकर लाए गए भैंसे के सींग, हिरण का चमड़ा इत्यादि। ओह ! इनको देखे बिना कैसे वह रह सका इतने दिन ?

प्रदीपराय के कमरे का पर्दा स्थिर लटका हुआ था। जरा भी हिलडुल नहीं रहा था कि पार्क से अन्दर की चीजें देखी जा सकें। भाई साहब क्या कमरे में हैं ? नहीं होते तो हवा इतनी भारी क्यों लग रही है ? दीवारें और परदे इतने स्तब्ध क्यों हैं ? जरूर वे अन्दर हैं। तभी तो कमरा इतना भरा-भरा लग रहा है।

हो सकता है भाई साहब न हों अकेली भाभी हों कमरे में और अचानक उसे देखकर वह बोल उठें—'क्यों, इतने दिनों के बाद घर की याद

आ रही है। मगर मेरे पास तो बैठकर तुम्हें गप लड़ाने-भर को समय नहीं है। जाओ, भागो यहा से।' ऐसी कल्पना करते ही सदीप का शरीर कांप उठा। कापते गले से ही उसने पुकारा—'भाई साहब !'

नहीं। भाभी का गला तो नही है यह। एक गभीर स्नेहिल कंठ उत्तर देता है अदर से। 'कौन सदेश ? आ जा अदर।'

सदेश ! ! !

सदीप के बचपन का बुलाने का नाम।

वह नाम अभी भी भाई साहब को याद है। आज भी उसे उसी नाम से वैसे ही स्वर मे बुला रहे है। उस माया-ममताविहीन, हृदयहीन मूर्ख भाई को। जल्दी से सदीप पर्दा उठाकर कमरे मे घुस पड़ा। रोग-शय्या पर पड़े उस महामहिम व्यक्ति को धुधलाई आखों से देखने लगा। उसके रुंधे गले से स्वर फूटा—'भैया !'

नही उसके मुंह से कोई आवाज नही निकली। केवल उसके होंठ काप उठे। वैसे ही जैसे बचपन में कोई शरारत करने पर उसे इसी तरह भाई साहब बुलाते थे।

प्रदीप के सिर पर पट्टी बधी हुई है और हाथ पर प्लास्टर चढा हुआ है। अपने दूसरे हाथ को सदीप के हाथ पर रखकर प्रदीप ने कहा—'मैं जानता था तू आएगा।'

संदीप के मुह से अभी भी कोई बात नही निकलती। किस मुंह से बात करे वह ? जाते समय क्या वह इतना भी कह गया था—'भैया, पता दे जा रहा हू। कोई जरूरत हो तो···।' नही, ऐसा कुछ भी नही कह गया था। एक बार फिर उसने गला साफ करके बोलने की चेष्टा की—'भैया !'

तभी माधुरी का निस्संग स्वर सुन पड़ा—'पता मालूम होता तो खबर भेजवा देती मगर···।'

'माधुरी, मुझे थोड़ा-सा हार्लिक्स अब दे सकती हो।' प्रदीप ने कहा।

माधुरी की आंखों में आग कौंध जाती है, मगर वह बरफ जैसी ठंडी आवाज में कहती है—'अभी दस मिनट पहले तो हार्लिक्स लिया है।'

'ओह ! हां, याद ही नहीं रहा। फिर एकाएक मुझे भूख-सी क्यों लग रही है ?'

'वह मैं समझ रही हूं।' कहकर माधुरी तेजी से कमरे से बाहर निकल जाती है। जाती हुई माधुरी को देखकर प्रदीप मृदुकंठ में कहता है—'देख संदेश, तूने अपनी भाभी को बड़ा नाराज कर लिया है। अब उसे मना ले। थोड़ी और देर हो जाती तेरे आने में तो तू उसके सामने सदा के लिए अपराधी हो जाता। फिर तो हम दोनों की इज्जत नहीं बचती।' जो हो अभी तो भाभी को वहां से हटाकर भाई ने उसकी इज्जत बचा दी।

संदीप की आंखों में आंसू रोके नहीं रुक रहे हैं। ऐसे आश्चर्यजनक दृश्य की कल्पना कौन कर सकता है ? कम से कम प्रदीप को तो वह दृश्य अद्भुत ही लग रहा था। एक पल सब कुछ भुलाकर प्रदीप वह दृश्य देखता रहा। फिर सहसा परेशान-सा बोल पड़ा—'बड़ी मुश्किल है, तू ऐसा चुप क्यों बैठा है ? कुछ भी तो नहीं हुआ है। मामूली-सी चोट है। तुझे कैसे पता चला ? अखबार से ? अखबार वाले तो तिल को ताड़ बनाने में उस्ताद होते हैं। जरा-सा कुछ हुआ नहीं कि उनके लिए बड़ी दुर्घटना हो जाती है। थोड़ी-सी चोट हाथ में लगी है।'

'और फिर मैं ?'

'सिर में कोई खास चोट नहीं लगी है। दो टांके लगे हैं शायद।'

'कब हुआ है ऐक्सीडेंट ?'

'यही आज तीसरा दिन है।'

'उस तरफ कहां जा रहे थे ?'

'मत पूछो। बारासाल के कारखाने में मजदूरों ने बिना नोटिस हड़ताल कर दी थी ?'

'क्या मांग थी उनकी ?'

'शनिवार की छुट्टी चाहिए उन्हें। वह भी फुल-पे। हमने कहा—छुट्टी चाहिए, लो। मगर बिना काम किए मजदूरी कैसे पाओगे ? बस, हड़ताल।'

'समझाया गया होता तो···!'

'वही करने तो जा रहा था कि रास्ते में यह झमेला हो गया। किस्मत थी तो बाल-बाल बच गए। जब ठीक सामने दैत्य की तरह लारी आती दीख पड़ी तो मन ही मन सोच लिया था कि इहलीला यहीं समाप्त है। मजा यह कि उसी एक सेकेंड में सारी बातें दिमाग में नाच गईं। क्या कभी दिमाग इतना तेज काम करता है? तू घर में था नहीं। तेरा पता भी नहीं मालूम था! तेरी भाभी और उज्ज्वल को किसे सौंपता? फिर अपने-आप पर हंसी आई—कौन लेगा? किसे देगा? मैं तो इसी पल सड़क पर चटनी हो जाऊंगा!'

'भैया···आ!'

'ले, तू तो औरतों की तरह टेसुए बहाने लगा। दुर!'

'भैया, इतने पर भी तुम मुझे कैसे माफ कर सके?'

'क्या बात कही? तेरा अपराध ही क्या था, जो मैं माफ करता?'

'नहीं भैया, सब मेरी ही गलती है।'

'नहीं रे,' प्रदीप ने हंसकर कहा—'इसे अपराध कहा जाय तो फिर बचपना और पागलपन जैसे शब्द कोश में किसलिए रखे गए हैं?'

'संदीप' माधुरी कमरे में प्रवेश करती है। प्रदीप की ओर एक बार देखती है, फिर बोल पड़ती है—'देख संदीप, झूठ नहीं बोलूंगी, बगल के कमरे से सारी बातें सुन चुकी हूं। तुम्हारे भैया को महापुरुष कहकर मजाक उड़ाती रही हूं। देखती हूं वह मजाक नहीं है। सच ही है। अगर मैं उनकी औरत न होकर भाई होती···।'

प्रदीप धीमे से हंसता है। संदीप एक बार भाभी की ओर देखकर मुंह नीचा कर लेता है। 'न, तुम्हें लज्जित होने की जरूरत नहीं।' माधुरी भी मुस्कराती है—'खाओगे न आज? तुम्हारे लिए खाना बन रहा है।'

'खाऊंगा नहीं? वाह। खाऊंगा और रहूंगा भी। अब यहां से हिलूंगा भी नहीं। सोचता हूं, योजना तो अच्छी ही थी, पर कार्यान्वित करते ही कैसे सब गोलमाल हो जा रहा है।'

दो दिन बाद मनीश आया। नौकर ने संदीप को बुला दिया। अर्णव

न चारा और एक बार ताककर पूछा—'कहां रहते हो ?'

'राय परिवार का।'

'जानता हूं। ऐसे घर का लड़का होकर तू उस···।' फिर सहसा चुप होकर पूछता है, 'वे हैं ?'

'हां-हां, एकदम भिट्फाट। जानता तो है अखबार वाले कैसा फालतू हंगामा रच देते हैं। अच्छा, छोड़ अपने लोगों का हालचाल बता।'

'हम लोगों का ?' कहकर वह एक पल संदीप की ओर देखता है। फिर नजर नीचे करके सिर खुजलाते हुए कहता है, 'भई वहां तो जो होना था हो चुका।'

'अरे हुआ क्या ?' ऐसे नई-नवेली की तरह शरमा क्यों रहा है ?'

'और क्या होगा ? तूने तो एकदम डुबकी मार ली। हम दोनों वहां अकेले···मतलब···समझ सकते हो क्या होगा—बस, हो गया गोलमाल।'

'अब क्या बताऊं भाई। समझते तो हो।'

'क्या कह रहा है ?'

'क्या कहने को रह ही गया है। और उसी समय से उसने न खाया न पीया। रो-रोकर हलकान हुई जा रही है। अब तू ही बता रजिस्ट्री कैसे होगी ?'

'रजिस्ट्री ? मलकदी।' और हो-हो करके संदीप हंसने लगता है। हंसी थोड़ी थमती है तो दोस्त की पीठ पर एक धौल जमाकर कहता है—'वंडरफुल केवल अड़तालीस घंटे में इतनी तरक्की ?'

अतीश फिर सिर खुजलाने लगता है।

'और क्या किया जाए ? मगर हां, एक बात समझ में आ गई कि प्रकृति के विरुद्ध विद्रोह करने का कोई लाभ नहीं। उससे प्रकृति की प्रतिशोध-भावना और प्रबल हो उठती है। मगर इसका क्या किया जाए। वह तो खटवास-पटवास लेकर पड़ी है।

'ओहहोह ! कचहरी का मामला है। तुम लोगों के चाहने से आनन-फानन में तो वह काम हो नहीं सकता। नोटिस देना होगा। एक महीने

का समय लगेगा। इतने दिन खाना-पीना बंद रखने से आदमी राजपाट पहुंच जाएगा। फिर ब्याह किसके साथ होगा ? अच्छा चल, मैं समझा-बुझाकर…'

'अरे, नहीं, ऐसा करना भी मत। सबसे बड़ी लज्जा तो उसे यही है कि कैसे वह तुझे मुंह दिखाएगी ? मगर ब्याह में गवाही तुझे ही करनी पड़ेगी।'

'तो फिर हमारी भी एक शर्त है।' गंभीर स्वर में सदीप कहता है।

'क्या ?' अतीश कान खड़ा कर लेता है। कहीं अभागा सुरभि में अपना हिस्सा न मांग बैठे, जैसा पहले तय हुआ था। उसके आशंकाग्रस्त मुख की तरफ देखकर सदीप हंसता है – 'मत घबड़ाओ बालक, केवल एक शर्त कि तुम्हारे ब्याह का भोज हमारे घर पर होगा और कुछ नहीं, बस।'

'तेरे घर से ? मतलब रायकोठी से ! क्या बक रहा है ?'

'इसमें ताज्जुब करने की क्या बात है ? क्या किसी का ब्याह उसके मित्र के घर से नहीं हो सकता ? मैं समझता हूं, तेरे मां-बाप तो इस ब्याह में…'

'सवाल ही नहीं उठता।'

'तब ? चल अपने भाई साहब से तेरा परिचय करा दूं।'

'आह अब उन्हें क्यों सानता है इसमें ?

'अबे चल !' सदीप अतीश को जबर्दस्ती पीछे ले जाता है।

'भैया, यह है हमारा दोस्त अतीश। इसी के साथ मैं इतने दिन रहा। अब देखो यह मुझे मकान छोड़ने का नोटिस देने आया है। क्योंकि शादी कर रहा है। इसीलिए।'

'अच्छा', प्रदीप हंसकर कहते हैं। 'फिर तो तुम्हारी समस्या हल हुई—पुनर्मूषिको भव।'

'और रास्ता क्या है ?'

और सम्मिलित हंसी का ठहाका कमरे में बिखर जाता है।

अतीश विदा होते समय पूछता है—'तो फिर तू गुस्सा नहीं हुअ न ?'

'न कम न ज्यादा ।'

'मगर वह तो तेरे ही डर से···।'

'और मैं इधर उसके डर से···।'

'तुझे किस चीज का डर है ?'

'वही···योजना की असफलता । और क्या ?'